Bachelor of Arts

Semester –II Paper

Code –

POLITICAL THEORY – II

राजनीतिक सिद्धान्त –II

Semester – II

Syllabi – Book Maping Table

राजनीतिक सिद्धान्त–II

इकाई संग्रह	विषय वस्तु	पृष्ठ संख्या
इकाई – 1		8–82
	राज्य तथा राज्य का विकास राज्य की उत्पत्ति के मुख्य सिद्धान्त – दैवी सिद्धान्त, शक्ति सिद्धान्त, पैतृक सिद्धान्त एवं मातृक सिद्धान्त राज्य की उत्पत्ति के संबंधी सिद्धान्त : सामाजिक समझौता, विकासवादी तथा मार्क्सवादी सिद्धान्त राज्य के संबंध में विभिन्न दृष्टिकोण प्रभुसत्ता	
इकाई – 2	लोकतन्त्र व कल्याणकारी राज्य का स्वरूप	83–133
	लोकतन्त्र विकास व कल्याणकारी राज्य सामाजिक परिवर्तन के सिद्धान्त	
इकाई – 3	लघु उत्तरात्मक व वस्तुनिष्ठ प्रश्न	134–176
	राज्य तथा राज्य का विकास राज्य की उत्पत्ति के मुख्य सिद्धान्त – दैवी सिद्धान्त, शक्ति सिद्धान्त, पैतृक सिद्धान्त एवं मातृक सिद्धान्त राज्य की उत्पत्ति के संबंधी सिद्धान्त : सामाजिक समझौता, विकासवादी तथा मार्क्सवादी सिद्धान्त राज्य के संबंध में विभिन्न दृष्टिकोण प्रभुसत्ता लोकतन्त्र विकास व कल्याणकारी राज्य सामाजिक परिवर्तन के सिद्धान्त	

Semester – II

विषय सूची

इकाई संग्रह		विषय वस्तु	पृष्ठ संख्या
इकाई – 1		राज्य की अवधारणा	8–82
1.0		इकाई का परिचय	8
1.1		इकाई के उद्देश्य	8
1.2		राज्य तथा राज्य का विकास	9–22
	1.2.1	परिचय	9
	1.2.2	उद्देश्य	9
	1.2.3	राज्य की परिभाषा	9
	1.2.4	राज्य के तत्व	11
	1.2.5	राज्य का विकास	16
	1.2.6	राज्य का भावी विकास व विशेषताएँ	20
	1.2.7	निष्कर्ष	21
	1.2.8	मुख्य शब्दावली	21
	1.2.9	अभ्यास हेतू प्रश्नू	21
	1.2.10	संदर्भ सूची	22
1.3		राज्य की उत्पत्ति के मुख्य सिद्धान्त : दैवीय, शक्ति, पैतृक व मातृक सिद्धान्त	23–34
	1.3.1	परिचय	23
	1.3.2	उद्देश्य	23
	1.3.3	दैवीय उत्पत्ति का सिद्धान्त	23
	1.3.4	शक्ति सिद्धान्त	26
	1.3.5	पैतृत व मातृक सिद्धान्त	29
	1.3.6	निष्कर्ष	33
	1.3.7	मुख्य शब्दावली	33
	1.3.8	अभ्यास हेतू प्रश्नू	33
	1.3.9	संदर्भ सूची	34
1.4		राज्य की उत्पत्ति संबंधी सिद्धान्तः सामाजिक समझौता, विकासवादी तथा मार्क्सवादी	35–52
	1.4.1	परिचय	35
	1.4.2	उद्देश्य	35
	1.4.3	सामाजिक समझौते का सिद्धान्त	35
	1.4.4	सामाजिक समझौते का विकास	35
	1.4.5	हॉब्स का विचार	36
	1.4.6	हॉब्स का समझौता	36

	1.4.7	आलोचना	37
	1.4.8	महत्व	38
	1.4.9	समझौते के कारण	39
	1.4.10	रूसो का सामाजिक समझौता	40
	1.4.11	विशेषताएँ	40
	1.4.12	आलोचना	41
	1.4.13	महत्व	42
	1.4.14	सामाजिक समझौता सिद्धान्त की आलोचना	42
	1.4.15	ऐतिहासिक आधार पर आलोचना	42
	1.4.16	दार्शनिक आधार पर आलोचना	43
	1.4.17	कानूनी संबंधी दृष्टिकोण	44
	1.4.18	विकासवादी या ऐतिहासिक सिद्धान्त	45
	1.4.19	मार्क्सवादी सिद्धान्त	48
	1.4.20	निष्कर्ष	51
	1.4.21	मुख्य शब्दावली	51
	1.4.22	अभ्यास हेतू प्रश्नू	51
	1.4.23	संदर्भ सूची	51
1.5		राज्य के सम्बन्ध में विभिन्न दृष्टिकोण	53–64
	1.5.1	परिचय	53
	1.5.2	उद्देश्य	53
	1.5.3	राज्य संबंधी मार्क्सवादी धारणा	53
	1.5.4	मार्क्सवादी धारणा की आलोचना	55
	1.5.5	उदारवादी दृष्टिकोण	56
	1.5.6	उदारवादी दृष्टिकोण के प्रकार	57
	1.5.7	उदारवाद का अर्थ	57
	1.5.8	राज्य संबंधी उदारवादी दृष्टिकोण	57
	1.5.9	गांधी जी का आदर्श राज्य	61
	1.5.10	निष्कर्ष	62
	1.5.11	मुख्य शब्दावली	63
	1.5.12	अभ्यास हेतू प्रश्नू	63
	1.5.13	संदर्भ सूची	63
1.6		प्रभुसत्ता	65–82
	1.6.1	परिचय	65
	1.6.2	उद्देश्य	65
	1.6.3	प्रभुसत्ता का अर्थ एवं परिभाषा	65
	1.6.4	प्रभुसत्ता के लक्षण/विशेषताएँ	66
	1.6.5	प्रभुसत्ता की सीमाएँ	68

1.6.6	प्रभुसत्ता के रूप	69
1.6.7	जॉन आस्टिन का एकलवादी प्रभुसत्ता का सिद्धान्त	71
1.6.8	एकलवादी प्रभुसत्ता की विशेषताएँ	72
1.6.9	आलोचना	72
1.6.10	प्रभुसत्ता का बहुलवादी सिद्धान्त	74
1.6.11	बहुलवाद की विशेषताएँ	76
1.6.12	निष्कर्ष	81
1.6.13	मुख्य शब्दावली	81
1.6.14	अभ्यास हेतू प्रश्नू	81
1.6.15	संदर्भ सूची	81
इकाई – 2	लोकतन्त्र व कल्याणकारी राज्य का स्वरूप	83–133
2.0	इकाई का परिचय	83
2.1	इकाई के उद्देश्य	83
2.2	लोकतन्त्र	84
2.2.1	परिचय	84
2.2.2	उद्देश्य	84
2.2.3	लोकतंत्र का अर्थ	84
2.2.4	लोकतंत्र के गुण	85
2.2.5	लोकतंत्र के दोष	87
2.2.6	प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रजातंत्र	89
2.2.7	प्रत्यक्ष प्रजातंत्र की संस्थाएं	89
2.2.8	प्रजातंत्र के मार्ग में बाधाएं	90
2.2.9	लोकतंत्र का प्रतिष्ठित अथवा उदारवादी सिद्धांत	95
2.2.10	उदार लोकतंत्र के गुण	96
2.2.11	उदार लोकतंत्र के दोष	97
2.2.12	उदार लोकतंत्र की सफलता	98
2.2.13	लोकतंत्र का बहुलवादी सिद्धांत	99
2.2.14	बहुलवादी लोकतंत्र की विशेषताएं	99
2.2.15	लोकतंत्र का विशिष्ट वर्गवादी सिद्धांत	101
2.2.16	विशिष्टवर्गवादी सिद्धांत का विकास	101
2.2.17	विशिष्ट वर्ग की विशेषताए	103
2.2.18	विशिष्ट वर्ग सिद्धांत की आलोचना	103
2.2.19	लोकतंत्र का मार्क्सवादी सिद्धांत	104
2.2.20	मार्क्सवादी सिद्धांत की आलोचना	105
2.2.21	निष्कर्ष	106
2.2.22	मुख्य शब्दावली	106
2.2.23	अभ्यास हेतु प्रश्न	106

2.2.24	संदर्भ सूची	107
2.3	विकास व कल्याणकारी राज्य	108–121
2.3.1	परिचय	108
2.3.2	उद्देश्य	108
2.3.3	विकास क्या है?	108
2.3.4	विकास की परिभाषा	108
2.3.5	विकास के लक्ष्य	110
2.3.6	कल्याणकारी राज्य	112
2.3.7	राज्य के लोककल्याणकारी कार्य	113
2.3.8	कल्याणकारी राज्य के सिद्धान्त की आलोचना	115
2.3.9	विकास के संबंध में समाजवादी विचारधाराएँ	116
2.3.10	विकासवादी अथवा लोकतान्त्रिक समाजवाद	117
2.3.11	विकास का गांधीवाद मॉडल	117
2.3.12	गांधी जी के मॉडल की आलोचनात्मक मूल्यांकन	120
2.3.13	निष्कर्ष	120
2.3.14	मुख्य शब्दावली	120
2.3.15	अभ्यास हेतू प्रश्न	120
2.3.16	संदर्भ ग्रन्थ सूची	121
2.4	सामाजिक परिवर्तन के सिद्धान्त	122–133
2.3.1	परिचय	122
2.3.2	उद्देश्य	122
2.3.3	सामाजिक परिवर्तन का अर्थ और परिभाषा	122
2.3.4	सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएँ	124
2.3.5	सामाजिक परिवर्तन के कारक	125
2.3.6	सामाजिक परिवर्तन के मार्ग में बाधाएँ	127
2.3.7	सामाजिक परिवर्तन के सिद्धान्त	128
2.3.8	निष्कर्ष	133
2.3.9	मुख्य शब्दावली	133
2.3.10	अभ्यास हेतू प्रश्न	133
2.3.11	संदर्भ सूची	133
3.0	लघु उत्तरात्मक व वस्तुनिष्ठ प्रश्न	134–176

इकाई –1

राज्य के सम्बन्ध में विभिन्न दृष्टिकोण

1.0 इकाई का परिचय

राजनीतिक–विज्ञान का अध्ययन करने के तरीकों में से एक है राज्य का, उसके सभी विविध विषय रूपों में अध्ययन करना, परन्तु राज्य शब्द को अवसर अंधाधुंध रूप से किसी सामान्य प्रवृत्ति अथवा किसी आदमी के स्वास्थ्य की, उसके मानस की अथवा उसकी आर्थिक स्थिति की 'अवस्था' जैसी किसी जानकारी को व्यक्त करने के लिए प्रयोग किया जाता रहा है। राजनीतिक–विज्ञान में भी इसको विभिन्न अल्पान्तरों के साथ प्रयोग किया जाता रहा है। सरकार, संस्था अथवा उसकी अवयव इकाइयों के एक पर्याय रूप में। अतः राज्य क्या है, यह प्रगति में सहायता करता है अथवा उसे रोकता है, कितने अधिकार राज्य के पास होने चाहिए और मानवीय कार्यकलाप के किन क्षेत्रों में, यह अन्य विद्यमान संस्थाओं से किस प्रकार भिन्न है और राज्य की प्रकृति के विषय में सही–सही व्याख्या क्या है? प्राचीन एथेंस के समय से ही ये प्रश्न राजनीति दार्शनिकों का मुख्य विषय रहा है और राजनीति–सिद्धांत से संबंधित आधारभूत कारणों की खोज निकालने के सचेत प्रयास प्राचीन यूनानियों के साथ, पश्चिमी दुनिया में शुरू हुए। इस प्रकार, इस अवधारणा को इस शास्त्र–विद्या के मूल विषय के रूप में समझना जरूरी हो जाता है।

राज्य की अनेक दृष्टिकोणों से कल्पना की गई है। हर सिद्धांत राज्य को अपनी ही शास्त्र–विद्या के शब्दों में समझाता और परिभाषित करता है। हर एक ने राज्य की उत्पत्ति, प्रकृत्ति, क्षेत्र, कार्यों व उद्देश्यों के संबंध में अपना ही सिद्धांत दिया है। ये सिद्धांत प्रायः रूप और अर्थ में एक–दूसरे से भिन्न होते हैं। इस इकाई में राज्य की प्रकृति के विषय में हम विभिन्न सिद्धांतों से विषयों को समझने का प्रयास करेंगें।

जब हम संप्रभुता की संकल्पना का विश्लेषण करते हैं, हमें राजनीति के अर्थ, राजनीति के साथ सामाजिक विज्ञानों के संबंध एवं राज्य के अर्थ के बारे में पूरी समझ होनी चाहिए।

उदारवादी दृष्टिकोण राजनीति के विवाद निपटाने, एकता कायम करने हेतू एक सामाजिक प्रक्रिया मानता है, समाएज की आम भलाई के लिए और शांतिपूर्ण। राज्य सभी कार्य किसी प्राधिकार अथवा अवपीड़क शक्ति की मदद से करता है, जिसे संप्रभुता कहा जाता है। संप्रभुता की अवधारणा ही आधुनिक राजनीतिक–विज्ञान का आधार है।

1.1 इकाई के उद्देश्य

1. राज्य शब्द के प्रयोगों में इतना ज्यादा विविधता है कि इसको समझने के लिए राज्य के मूल लक्षणों एवं सिद्धांतों को जानना।
2. राज्य के उद्‌भव के बारे में जानना।
3. आंतरिक प्रभुसता व बाह्य प्रभुसता को समझना।
4. राज्य तथा अन्य संस्थाओं के भेद को जनना।
5. राज्य के ऐतिहासिक विकास के विभिन्न चरणों को समझना।

1.2 राज्य तथा राज्य का विकास (State and Development of State)

1.2.1 परिचय

समाज में रहते हुए अपने जीवन को शांतिमय एवं सुखद बनाना व्यक्ति का उद्देश्य होता है और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कुछ अधिकार और स्वतंत्रताएं आवश्यक है। इन अधिकारों और स्वतंत्रताओं की रक्षा के लिए एक सर्वोच्च शक्ति का होना आवश्यक है, और इस सर्वोच्च शक्ति का नाम ही 'राज्य है। प्रसिद्ध विद्वान् (Barker) ने ठीक ही कहा है कि, "मानव चेतना के लिए स्वतंत्रता, स्वतंत्रता के लिए अधिकार, अधिकारों के आनन्द उठाने के लिए राज्य आवश्यक है।" ("Human consciousness postulate liberty, liberty involves right and rights demand the state")। आज का राज्य केवल व्यक्ति के अधिकारों और स्वतंत्रताओं की रक्षा ही नहीं करता अपितु अरस्तु (Aristotle) के कथनानुसार "राज्य जीवन के लिए अस्तित्व में आया है और जीवन को और भी बढ़िया बनाने के लिए स्थिर है।" ("State comes into existence for life and continues for the sake of good life.") राज्य के बिना एक सभ्य जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

साधारण बोलचाल में 'राज्य' शब्द को 'प्रांत' (Province), 'राष्ट्र' (Nation), 'समाज' (Society), 'सरकार' (Government), 'देश' (Country) आदि के लिए प्रयोग किया जाता है। इसी तरह राज्य शब्द को संघ की इकाइयों– जैसे भारत में पंजाब, हरियाणा, बिहार, राजस्थान आदि और संयुक्त राज्य अमेरिका में न्यूयार्क, कैलिफोर्निया आदि के लिए भी प्रयोग किया जाता है। परंतु यह गलत है क्योंकि राजनीति शास्त्र में इस शब्द के विशेष अर्थ होते हैं। राज्य शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग मैक्यावेली (Machiavelli) ने अपनी पुस्तक 'दि प्रिंस' (The Prince) में किया है। स्टेट (State) शब्द लैटिन भाषा के स्टेट्स (Status) शब्द से निकला है। जिसका अर्थ एक व्यक्ति का 'सामाजिक स्तर'।

1.2.2 उद्देश्य

1. राज्य शब्द के अर्थ व उद्‌भव को समझ सके और उसके मूल लक्षण जान सकें।
2. राज्य का उसके विभिन्न पर्यायों से भेद कर सके।
3. राज्य की प्रकृति के विषय में इसके विकास की प्रक्रिया को समझ सके।

1.2.3 राज्य की परिभाषा (Definition of State)

मैकाइवर (Maclver) ने लिखा है कि "यह आश्चर्य की बात है कि राज्य जैसे स्पष्ट शब्द की परिभाषाएं विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से की है"। राज्य की परिभाषा के संबंध में इस प्रकार की विभिन्नता का कारण यह है कि राज्य के उद्देश्य और कार्यों के संबंध में विचारकों ने अलग–अलग विचार व्यक्त किये हैं। गार्नर (Garner) के अनुसार "राज्य की उतनी ही परिभाषाएं हैं; जितने इस विषय में लेख हैं।" लेकिन फिर भी राज्य के अर्थ के संबंध में एकरूपता नहीं है। राज्य की प्रमुख परिभाषाएं निम्नलिखित हैं:–

1. **अरस्तु (Aristotle) के अनुसार** – "राज्य परिवारों तथा ग्रामों का एक ऐसा समुदाय है, जिसका उद्देश्यपूर्ण और आत्मनिर्भर जीवन की प्राप्ति है।" ("The State is a union of families and villages, having for its end-perfect and self-sufficient life.")
2. **सिसरो (Cicero) के अनुसार** – "राज्य उस समुदाय को कहते हैं, जिसमें यह भावना विद्यमान हो कि सब

मुनष्यों को उस समुदाय के लाभों का परस्पर लाभ मिलकर उपयोग करना है।" ("The State is numerous society united by a common sense of right and natural participation in advantages.")

3. **ब्लंशली (Bluntschli) के अनुसार** – "राजनैतिक दृष्टिकोण से निश्चित भूमि पर संगठित आबादी राज्य है।" ("The State is a political organized people over a definite territory.")

4. **वुडरो विल्सन (Woodrow Wilson) के अनुसार** – "एक निश्चित क्षेत्र के अंदर कानून में संगठित जनता को राज्य कहते हैं"। ("The State is a people organized for law within a definite territory.")

5. **लास्की (Laski) के अनुसार** – "राज्य एक प्रादेशिक समाज है, जो सरकार और प्रजा में विभाजित है, और जो अपने निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में अन्य सभी समुदायों पर सर्वोच्च सत्ता रखता है।" ("The state is a territorial society divided into Government and the subjects, claiming within its allotted physical area, supremacy on all other institutions.")

6. **हॉलैण्ड (Halland) के अनुसार** – "राज्य मनुष्यों के ऐसे समूह का नाम है, जो एक निश्चित प्रदेश में रहता है, और जिसमें बहुसंख्या अथवा एक निश्चित वर्ग की इच्छा, उनकी शक्ति के बल से उन लोगों पर लादी जाती है, जो उसका विरोध करते हैं।" ("A numerous assemblage of human beings, generally occupying a certain territory among whom the will of majority, or of an ascertainable class of persons, is by the strength of such a majority, or class made to prevail against any of their number who oppose it.")**मैकाइवर (Maciver) के अनुसार** – "राज्य एक ऐसा समुदाय है जो एक सत्तावान सरकार द्वारा घोषित कानूनों के अनुसार एक निश्चित प्रदेश में रहने वाले जनसमुदाय में सामाजिक व्यवस्था की बाह्य अवस्थाओं को बनाए रखता है।" ("The State is an association which is acting through law as promulgated by Government endowed to this end with the coercive power, maintains with a community territorially demarcated the universal external conditions of social order.")

7. **गिलक्राइस्ट (Gillchrist) के अनुसार** – "राजनीति–शास्त्र में राज्य उसे कहते हैं, जहां कुछ लोग एक निश्चित प्रदेश में एक सरकार के अधीन संगठित होते हैं। यह सरकार आन्तरिक तथा बाहरी मामलों में अन्य सरकारों से स्वतंत्र होती हैं" ("The State in a concept of Political Science, exits where a number of people living on a definite territory are united under a Government which in internal matters is the organ for expressing their sovereignity and in external matters is independent of other Governments.")

8. **ओपनहेम (Oppenheim) के अनुसार** – "जब किसी देश में रहने वाले लोग अपनी सम्प्रभुता सम्पन्न सरकार के अधीन रहते हैं तब वहां राज्य कायम होता है।" ("The State exists when number of people are settled in a country under its own sovereign Government.")

9. **फिलीमोर (Filimore) के अनुसार** – "राज्य मनुष्यों का वह समुदाय है, जो स्थाई रूप से एक निश्चित प्रदेश में रहता है, जो सामान्य कानून, रीतिरिवाज तथा परम्परा से एक राजनीतिक संगठन से बंधा हो, तथा जो एक संगठित शासन द्वारा उस प्रदेश के सभी व्यक्तियों और वस्तुओं पर स्वतंत्र सम्प्रभुता द्वारा नियंत्रण करता हो, और जिसे संसार के राष्ट्रों के साथ युद्ध और सन्धि करने एवं अन्तर्राष्ट्रीय संबंध स्थापित करने का अधिकार प्राप्त हो।" ("A state for all purposes of international law is a people permanently occupying

a fixed territory, bound together by common laws, habits and customs into one body politics, exercising through the medium of an organized Government, independent, having sovereignity and control over all persons and things within its boundaries, capable of waging war and having peace and of entering into all international relations with the communities of the globe.")

10. **गार्नर (Garner) के अनुसार** – "राज्य संख्या में कम या अधिक व्यक्तियों का एक ऐसा समुदाय है, जो कि एक निश्चित भू–भाग पर स्थायी रूप से बसा हो, बाहरी नियंत्रण से पूरी तरह या लगभग स्वतंत्र हो, और जिसकी ऐसी संगठित सरकार हो, जिसके आदेशों का पालन अधिकतर जनता स्वाभाविक रूप से करती हो।" ("State is a community of persons more or less numerous, permanently occupying a definite portion of territory, independent or nearly so, of external control and possessing an organized Government to which the great body of inhabitants render habitual obedience.")

फिलिमोर (Filimore), गिलक्राइस्ट (Gillchrist) तथा गार्नर (Garner) द्वारा दी गई उपर्युक्त परिभाषाएं ही सबसे श्रेष्ठ हैं। क्योंकि इनमें राज्य के चारों तत्वों–जनसंख्या, निश्चित भू–भाग (Fixed Territory), सरकार तथा प्रभुसत्ता (Sovereignity) का स्पष्ट उल्लेख है। इन परिभाषाओं में आन्तरिक तथा बाहरी दोनों ही प्रकार की प्रभुसत्ता का उल्लेख है। अतः वर्तमान समय में राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में फिलिमोर (Filimore), गिलक्राइस्ट (Gillchrist) तथा गार्नर (Garner) द्वारा दी गई परिभाषाएं मान्य हैं।

1.2.4 राज्य के तत्व (Elements of State)

राज्य के तत्वों के बारे में विभिन्न विचारकों ने विभिन्न मत व्यक्त किये हैं। राज्य के आवश्यक चार तत्व हैं। इन चार तत्वों का वर्णन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता हैः–

1. **जनसंख्या (Population)** : सभी विद्वान् जनसंख्या को राज्य के आवश्यक तत्व के रूप में स्वीकार करते हैं। लेकिन एक राज्य के अंतर्गत कितनी जनसंख्या होनी चाहिए, इस संबंध में विद्वानों के विचारों में पर्याप्त मतभेद है। प्लेटो (Plato) ने अपनी पुस्तक 'रिपब्लिक' (Republic) में आदर्श राज्य का चित्रण करते हुए बताया है, कि एक आदर्श राज्य (Ideal State) में 5040 नागरिक होने चाहिए। इसी प्रकार रूसों (Rousseau) के अनुसार एक राज्य की जनसंख्या 10 हजार होनी चाहिए। व्यवहार में (In practice) जहां भारत, चीन, अमेरिका और सोवियत रूस जैसे करोड़ों जनसंख्या वाले राज्य हैं। वहीं दूसरी और सान मेरिनों तथा मोनाको जैसे राज्य भी हैं जिनकी जनसंख्या केवल कुछ हजार ही है। वस्तुतः जनसंख्या का कम या अधिक होना अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। गार्नर ने सत्य कहा है कि "जनसंख्या राज्य के संगठन को कायम रखने के लिए पर्याप्त होनी चाहिए और उससे अधिक नहीं होनी चाहिए जितनी के लिए भूखंड और राज्य के साधन पर्याप्त हों"। ("The population must be sufficient in number to maintain a State organization and that it ought not to be greater than the territorial area and resources of the State which are capable of supporting.")

2. **निश्चित प्रदेश अथवा भू–भाग (Fixed Territory or Area)** : राज्य का दूसरा तत्व निश्चित प्रदेश अथवा भू–भाग है। जब तक जनसमुदाय पृथ्वी के किसी निश्चित प्रदेश पर निवास नहीं करता तब तक वह राज्य नहीं बन सकता। अतः बिना निश्चित भूमि के राज्य का अस्तित्व नहीं हो सकता। इस संबंध में गार्नर के ये शब्द उचित प्रतीत होते हैं कि "ऐसे लोग राज्य का निर्माण तब तक नहीं कर सकते जब तक कि वे स्थाई रूप से किसी निश्चित भूखंड पर बस नहीं जाते"। (They People do not become a State until…. they

have established themselves permanently on a definite portion of territory.) एक अन्य विद्वान ब्लन्शली ने भी निश्चित प्रदेश के महत्व को स्वीकार करते हुए कहा है "एक निश्चित प्रदेश में राजनीतिक रूप से संगठित लोग ही राज्य हैं।" (The state is a politically organized people of a definite territory.)

राज्य के पास प्रदेश अथवा क्षेत्र भू–भाग कितना होना चाहिए, इस संबंध में विभिन्न विचारकों ने अलग–अलग मत व्यक्त किये हैं। प्राचीन यूनानी विचारक प्लेटो और अरस्तु दोनों छोटे आकार वाले राज्यों के पक्ष में थे। इसी प्रकार डी.टाकविले तथा रूसो ने राज्यों के छोटे आकार का समर्थन किया है। रूसो ने लिखा है कि "जिस प्रकार प्रकृति ने मनुष्य के कद की सीमाएं रखी हैं उसी प्रकार अच्छी तरह शासित राज्य की सीमाएं भी होनी चाहिए। (Just as nature has set limits to the stature of a normal man, so it has equally set limits to the size of a well-governed state) पुरातन समय में इन विद्वानों के विचार सही थे। आज के युग में प्रदेश अथवा भू–भाग की सीमा निश्चित करना उचित नहीं है। हम देखते हैं कि संसार में कुछ राज्यों जैसे सान मेरिनों और मोनाको आदि राज्य है। जिनका क्षेत्रफल लगभग 40 तथा 50 वर्गमील है तथा दूसरी और भारत अमेरिका तथा चीन आदि भी राज्य हैं। जिनका प्रदेश लाखों वर्गमील है।

यह भी याद रखना हेगा कि प्रदेश अथवा भू–भाग का अभिप्राय केवल स्थल से ही नहीं है। अपितु इसके अन्तर्गत वे सभी प्राकृतिक साधन आ जाते हैं जो किसी देश के स्थल, जल तथा वायु से प्राप्त हों। दूसरे शब्दों में किसी राज्य में विद्यमान नदियां, सरोवर, झीलें, पर्वत और खनिज पदार्थ समुद्री तट से 12 मील तक का समुद्र तथा वायुमण्डल, भू–भाग के अंतर्गत आते हैं। भू–भाग अथवा प्रदेश के अंतर्गत पायी जाने वाली इन वस्तुओं की स्थिति का राज्य की स्थिति पर गहरा प्रभाव पड़ता है। जैसे समुद्र से घिरे हुए राज्य नौ–शक्ति की दृष्टि से अधिक शक्तिशाली होते हैं। ग्रेट–ब्रिटेन तथा जापान इसके प्रमुख उदाहरण हैं। इसी प्रकार विस्तृत भूमि वाले राज्यों की वायु शक्ति श्रेष्ठतर होती है। जैसे अमेरिका तथा रूस की वायु शक्ति अधिक स्थल के कारण इतनी बढ़ी हुई है।

यह कहना अनुचित न होगा कि समस्त भू–भाग अथवा प्रदेश में भौगोलिक समीपता तथा निरन्तरता होनी चाहिए। भौगोलिक दूरी जनता में मन–मुटाव पैदा करती है जो राज्य के विभाजन के कारण बन सकती है। जैसे सन् 1971 में पाकिस्तान का विभाजन तथा बांग्ला देश के उदय का कारण भौगोलिक दूरी था। भौगोलिक समीपता से कुशल प्रशासन चलाने में सहायता मिलती है।

3. **सरकार अथवा शासनतंत्र (Government)** : तीसरा आवश्यक तत्व शासन तन्त्र अथवा सरकार है। किसी निश्चित प्रदेश अथवा भू–भाग पर बसा हुआ मनुष्यों का समुदाय तब तक राज्य नहीं कहा जा सकता, जब तक राजनीतिक दृष्टि से संगठित न हों, सरकार ही एक ऐसा संगठन है। सरकार एक संस्था है जिसके द्वारा राज्य की इच्छा प्रकट तथा कार्यान्वित की जाती है। गार्नर ने माना है कि "सरकार राज्य का वह साधन है जिसके द्वारा राज्य के उद्देश्य अर्थात् सामान्य नीतियों और सामान्य हितों की पूर्ति होती है।" (Government is the agency or machinery through which common policies are determined and by which common affairs are regulated and common interests promoted.)

सरकार का कोई एक निश्चित रूप नहीं है जो सभी राज्यों को मान्य हो। आजकल सरकार कई प्रकार की हो सकती है जैसे कि :–

1. **प्रजातंत्र (Democracy)** : भारत, अमेरिका, इंग्लैंड, स्विटजरलैंड, फ्रांस, जर्मनी तथा न्यूजीलैंड आदि देशों में सरकार का रूप प्रजातंत्र है।

2. **तानाशाही (Dictatorship)** : क्यूबा (Cuba), उतरी कोरिया, चीन, पोलैंड इत्यादि देशों में कम्युनिस्ट सरकारी पार्टी की तानाशाही है।

3. **राजतंत्र (Monarchy)** : कुवैत, सऊदी अरब, नेपाल आदि देशों में राजतन्त्रीय सरकार है।

4. **संसदीय (Parliamentary)** : इंग्लैंड, जापान तथा भारत आदि देशों में संसदीय सरकारें हैं।

5. **अध्यक्षात्मक (Presidential)** : अमेरिका तथा फ्रांस आदि देशों में अध्यक्षात्मक सरकार है।

6. **सैनिक शासन का अधिनायकतंत्र (Military Dictatorship)** : ईराक, लीबिया तथा पाकिस्तान आदि देशों में सैनिक शासन पाया जाता है।

इसी प्रकार कई देशों में संघात्मक सरकारें हैं जैसे भारत, अमेरिका तथा स्विट्जरलैंण्ड आदि देशों में, जबकि अन्य कई देशों में एकात्मक सरकारें हैं। जैसे इंग्लैड तथा जापान आदि देशों में एकात्मक सरकारें पाई जाती हैं।

जिस प्रकार राज्य के प्रदेश अथवा भू–भाग तथा जनसंख्या के कम या अधिक होने से अंतर नहीं पड़ता है। उसी प्रकार सरकार के स्वरूप में परिवर्तन होने पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, क्योंकि सरकार को मुख्यतः तीन प्रकार के कार्य करने पड़ते हैं :–

1. कानून–निर्माण (Law Making)
2. कानून लागू करना (Law Application) तथा
3. न्याय करना (Judicial)

इन तीन प्रमुख कार्यों को सरकार के निम्नलिखित तीन अंगों द्वारा किया जाता है :–

1. विधानमण्डल (Legislature) – कानून का निर्माण करती है।

2. कार्यपालिका (Executive) – कानून लागू करती है, तथा

3. न्यायपालिका (Judiciary) – न्याय प्रदान करती है।

प्राचीन काल में सरकार बाहरी आक्रमण से रक्षा और आन्तरिक क्षेत्र में शांति और व्यवस्था बनाये रखने का कार्य करती थी, अर्थात् पुलिस कार्य, इसलिए इसे पुलिस राज्य भी कहा जाता था। लेकिन आज लोक–कल्याणकारी राज्य की धारणा को अपना लिए जाने के कारण राज्य का कार्य–क्षेत्र बहुत अधिक व्यापक हो गया है। परंतु अब भी सरकार को इतना शक्तिशाली होना चाहिए कि वह राज्य में शांति और व्यवस्था स्थापित कर सके तथा देश की बाहरी आक्रमणों अथवा युद्धों से रक्षा कर सके। लीकॉक के अनुसार "आवश्यकता केवल इस बात की है कि उच्च शक्ति के प्रति दृढ़ आज्ञाकारिता होनी चाहिए। यह शर्त चाहे अत्याचारी व तानाशाही सरकार पूरी करें, चाहे लोक–इच्छा पर आधारित सरकार राज्य के लिए इस शर्त का पूरा होना ही पर्याप्त है।" (The mere existence of settled obedience to superior force in all, that is required, any form of despotism and tyranny which fulfils these conditions establish political State as much as the Government whose authority rests on general acquisance.) इस प्रकार सरकार राजतंत्र, कुलीनतंत्र, तानाशाही अथवा प्रजातंत्र अर्थात् किसी भी प्रकार की हो सकती है, यद्यपि प्रजातंत्र सरकार अन्य सरकारों की तुलना में निश्चित रूप से श्रेष्ठ समझी जाती है।

4. **प्रभुसत्ता (Sovereignty)** – यदि जनसंख्या राज्य का व्यक्तिगत तत्व है और प्रदेश राज्य का भौतिक तत्व है और प्रदेश राज्य का संगठनात्मक तत्व है तो प्रभुसत्ता राज्य का 'प्राण' (Life) है। गैटल (Getel) के शब्दों में, "प्रभुसत्ता ही राज्य का वह लक्षण है जो उसे अन्य समुदायों से अलग करता है।" (It is the possession of Sovereignty that the State is distinguished from all other forms of human associations.) एक निश्चित प्रदेश अथवा भू–भाग पर रहने वाले तथा सरकार सम्पन्न लोग भी उस समय तक राज्य का निर्माण नहीं कर सकते, जब तक कि इनके अधिकार में प्रभुसत्ता न हो। उदाहरण, सन् 1947 से पूर्व भारत की अपनी जनता थी, उसकी एक निश्चित भूमि और सरकार भी थी परंतु फिर भी वह सही अर्थों में राज्य नहीं था। स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ, प्रभुसत्ता प्राप्त होने पर ही उसे राज्य का दर्जा प्राप्त हुआ।

'प्रभुसत्ता' को अंग्रेजी भाषा में Sovereignty कहते हैं जो कि लेटिन भाषा के शब्द 'सुप्रेनस' से निकला है। जिसका अर्थ है– 'सर्वोच्च' इस प्रकार प्रभुसत्ता का अर्थ हुआ राज्य की सर्वोच्च शक्ति। राज्य की प्रभुसत्ता से तात्पर्य है कि राज्य आन्तरिक रूप में उच्चतम है अर्थात् अपने क्षेत्र में स्थित सभी व्यक्तियों एवं समुदायों को आज्ञा प्रदान कर सकें। इन आज्ञाओं का पालन करवा सके तथा बाहरी नियंत्रण से मुक्त हो अर्थात् दूसरे राज्यों के साथ अपनी इच्छानुसार संबंध स्थापित कर सके। किन्तु यदि कोई राज्य स्वेच्छा से अपने ऊपर किसी प्रकार का प्रतिबंध स्वीकार कर लेता है तो उससे उसकी प्रभुसत्ता किसी भी प्रकार सीमित नहीं होती। जैसे अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों में संयुक्त राष्ट्र संघ और राष्ट्रमण्डल के सदस्य, विभिन्न राज्य अपनी इच्छा के अनुसार बने हुए हैं। और जब चाहे इन्हें छोड़ भी सकते हैं। यह राज्य की प्रभुसत्ता पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाते।

संक्षेप में राज्य के निर्माण के लिए कम से कम चार आवश्यक तत्व – जनसंख्या, निश्चित प्रदेश अथवा भू–भाग, सरकार अथवा संगठन तथा प्रभुसत्ता हैं। प्रभुसत्ता दो प्रकार की है।

1. आंतरिक प्रभुसत्ता
2. बाहरी प्रभुसत्ता

राज्य के कुछ और तत्व (Other Elements of State)

कुछ विद्वानों जिनमें बगैस (Burgess) तथा विलोबी (Willoughby) आदि महत्वपूर्ण है, ने राज्य के ऊपरलिखित आवश्यक चार तत्वों के अतिरिक्त कुछ और भी निम्न तत्वों पर बल दिया हैः–

1. **निरन्तरता (Continuity)** – सरकार का स्वरूप अथवा प्रकार चाहे बदलता रहे लेकिन इस परिवर्तन का राज्य के अस्तित्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इसका तात्पर्य है राज्य निरंतर बना रहता है।
2. **सर्वव्यापकता (All Comprehensive)** – इसका तात्पर्य राज्य में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति तथा वस्तु और आने वाले प्रत्येक क्षेत्र पर राज्य की सर्वोच्चता और सर्वव्यापकता होती है।
3. **स्थायित्व (Permanence)** – इसका तात्पर्य है कि लोग जब एक बार अपने आप को राज्य के रूप में संगठित कर लेते हैं। तो वे किसी न किसी रूप में राज्य में ही रहते हैं। यदि किसी कारण जैसे युद्ध या सन्धि आदि के कारण कई बार अनेक राज्य समाप्त हो जाते हैं, अथवा अन्य राज्यों में शामिल कर लिए जाते हैं, ऐसा करने पर प्रभुसत्ता एक राज्य से दूसरे राज्य के पास चली जाती है। उदाहरण 1971 में भारत – पाकिस्तान युद्ध के कारण, पाकिस्तान से कटकर बंगलादेश बन गया। इससे प्रभुसत्ता बंगलादेश के पास आ गई और जनता बंगलादेश राज्य की जनता कहलाने लगी।

4. **एकता (Unity)** – राज्य की जनता में एकता होनी चाहिए। राज्य की किसी भी भाग पर दूसरे किसी राज्य का अधिकार नहीं होना चाहिए। इसका अर्थ है कि किसी एक क्षेत्र पर दो राज्यों की प्रभुसत्ता नहीं होनी चाहिए।

5. **समानता (Equality)** – सभी राज्य चाहे वे छोटे अथवा बड़े आकार के हो, कम अथवा अधिक आबादी वाले हों, अन्तर्राष्ट्रीय कानून (International Law) के अनुसार उन्हें राज्य ही माना जायेगा। दूसरे शब्दों में कोई राज्य चाहे विकसित (Developed) है अथवा अविकसित (Undeveloped) कमजोर अथवा शक्तिशाली, राज्य ही माना जायेगा।

6. **मान्यता (Recognition)** – वर्तमान युग में अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता (International Recognition) को भी राज्य का एक तत्व माना जाता है। जब तक किसी राज्य को अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता नहीं मिलती, उसे राज्य नहीं माना जा सकता। परंतु कई बार कुछ राज्य किसी एक अमुक राज्य को मान्यता प्रदान करते हैं, परंतु शेष दूसरे राज्य उसे मान्यता प्रदान नहीं करते ऐसी स्थिति में भी राज्य, राज्य ही होता है। दूसरे शब्दों में अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता एक राजनीतिक पहलू होती है। जिसका राज्य के अस्तित्व पर प्रभाव नहीं पड़ता है।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि उपरलिखित तत्वों को राज्य के तत्व कहना उचित नहीं है। अधिक से अधिक इन्हें एक राज्य के गुण अथवा विशेषताऐं अथवा लक्षण ही कहा जा सकता है।

राज्य के तत्वों में सबसे महत्वपूर्ण तत्व कौन–सा है? (Which Element is most important of all the elements of a state?)

एक प्रश्न यह उठता है कि राज्य के चारों अनिवार्य तत्वों – जनसंख्या, निश्चित प्रदेश अथवा भू–भाग, सरकार तथा प्रभुसत्ता आदि तत्वों में कौन–सा तत्व अधिक महत्वपूर्ण है। राज्य के चारों तत्व ही अपनी–अपनी जगह पर महत्वपूर्ण हैं और किसी एक तत्व के अभाव में राज्य का निर्माण नहीं हो सकता। लेकिन फिर भी राज्य के अनिवार्य तीन तत्व अर्थात् जनसंख्या, निश्चित प्रदेश तथा सरकार दूसरे समुदायों में भी मिल जाते हैं। परंतु राज्य का चौथा महत्वपूर्ण तत्व प्रभुसत्ता केवल राज्यों में ही संभव है। प्रभुसत्ता ही एक ऐसा तत्व है जो राज्य को अन्य समुदायों से अलग तथा सर्वश्रेष्ठ बनाता है। इसलिए कुछ लेखक प्रभुसत्ता को अन्य तत्वों से अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं।

गैटल (Gettel) के शब्दों में, "राज्य न ही जनसंख्या है, न ही भूमि अथवा निश्चित प्रदेश या भू–भाग, न ही सरकार बल्कि इन सब के अतिरिक्त राज्य के पास वह इकाई होनी चाहिए जो इसे एक अलग व स्वतंत्र राजनीतिक सता बनाती है।" ("The State is not the people, not the land, nor the Government, but all of them and in addition the State must possess that unity which makes it a district and independent political entity.")

राज्य के निर्माण के लिए चारों तत्वों का होना आवश्यक है। गैटल ने सत्य कहा है कि "इनमें से किसी भी तत्व की कमी राज्य को नष्ट कर देती है। सभी का संयुक्त रूप में होना बहुत जरूरी है। ("The absence of any one of these elements destroys the state, all must exist in combination.")।

क्या निम्नलिखित राज्य हैं? (Are the following States?)

1. जम्मू व कश्मीर
2. संयुक्त राष्ट्र
3. बंगला देश
4. हरियाणा
5. भारत

1. जम्मू व कश्मीर तथा हरियाणा, पंजाब और न्यूयार्क को राज्यों के नाम से पुकारा जाता है। यहां तक कि भारत के संविधान में भी पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, जम्मू व कश्मीर को राज्य कहा गया है। इसी प्रकार अमेरीका के संविधान के अनुसार न्यूयार्क, कैलिफोर्निया आदि को भी राज्य कहा गया है। परन्तु राजनीति शास्त्र के अनुसार यह ठीक नहीं है। सत्य यह है कि इन सबके पास अपना निश्चित प्रदेश, सरकार तथा जनसंख्या तो होती है, परंतु यह राज्य नहीं हैं क्योंकि इन सबके पास प्रभुसत्ता नहीं है।
2. संयुक्त राष्ट्र दूसरे विश्व युद्ध के बाद विश्व शांति स्थापित करने के लिए अस्तित्व में आया जिसके लगभग 190 राज्य सदस्य हैं। इसे राज्य मानना एक भूल है। यह स्वतंत्र प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्यों का संघ है परंतु राज्य नहीं। इसका कोई निश्चित क्षेत्र नहीं है और न ही इसके पास प्रभुसत्ता है।
3. बंगलादेश एक राज्य है क्योंकि इसमें राज्य के चारों आवश्यक तत्व विद्यमान हैं।
4. भारत एक राज्य है क्योंकि इसमें राज्य के चारों आवश्यक तत्व विद्यमान हैं।

प्रश्न (Questions)

1. राज्य की परिभाषा दीजिए तथा उसके अनिवार्य तत्वों का वर्णन कीजिए। (Define state and discuss its essential elements.)
2. राज्य के अर्थ तथा तत्वों की व्याख्या करो। राज्य के तत्वों में से कौन–सा तत्व अधिक महत्वपूर्ण है और क्यों? (Explain the meaning and elements of the state. Which elements of the State is most important and why?)

1.2.5 राज्य का विकास (Development of the State)

वर्तमान समय में राज्य की उत्पत्ति के संबंध में ऐतिहासिक सिद्धान्त को स्वीकार किया जाता है। जिसके अनुसार राज्य ऐतिहासिक विकास का परिणाम हैं। राज्य का उदय मानवीय सभ्यता के प्रारंभिक दिनों में अत्यंत बिखरे रूप में हुआ और सभ्यता के विकास के साथ–साथ इसके रूप में और सभ्यता के विकास के साथ–साथ इसके स्वरूप में भी परिवर्तन होता रहा। आदिकाल से लेकर आज तक राज्य को अपने वर्तमान स्वरूप राष्ट्रीय राज्य को प्राप्त करने में अनेक अवस्थाओं और रूपों से होकर गुजरना पड़ा है। यह कहना बहुत कठिन है कि राज्य की ये अवस्थाएं कौन–कौन सी थी, क्योंकि इस संबंध में राजनीति विज्ञान के विद्वानों में बहुत मतभेद है। फिर भी विश्व के सभी राज्यों के विकास के विश्लेषण के आधार पर राज्य के विकास की कुछ अवस्थाएं निश्चित की गयी है। ये अवस्थाएं निम्नलिखित है :–

कबीला राज्य (The Tribal State)

कुटुम्ब या परिवार सबसे पहली सामाजिक इकाई, और कबीला सबसे पहली राजनीतिक इकाई थी। कबीले में ही हम सबसे पहले सरकार अथवा राज्य के लक्षण पाते हैं, क्योंकि राज्य का सबसे बड़ा लक्षण यह है कि कुछ व्यक्ति आज्ञा देते हैं, और शेष उनकी आज्ञा का पालन करते थे। आज्ञा का उल्लंघन करने वाले व्यक्तियों को दण्डित भी किया जाता था। उनके रीति–रिवाज ही कानून समझे जाते थे। इन कबीलों में आपस में लगातार युद्ध होते रहते थे और जब किसी शक्तिशाली कबीले का सरदार आस–पास के कमजोर कबीलों को जीत लेता था, तो वह राजा बन बैठता था। और जीते हुए कबीले में रहने वाले लोग उसकी प्रजास बन जाते थे। इस प्रकार विश्व के अलग–अलग क्षेत्रों में छोटे–छोटे अनेक राज्य स्थापित हो गये।

पूर्वी साम्राज्य (The Oriental Empire)

धीरे–धीरे कबीले उन स्थानों पर बसने लगे जहां वे सरलता से गुजर–बसर कर सके। तेजी के साथ बढ़ने वाली जनसंख्या के लिए भूमि की आवश्यकता ने युद्धों को जनम दिया और ये युद्ध भी इन राज्यों की स्थापना के कारण बने। युद्धों के परिणाम स्वरूप दासों की संख्या बढ़ी, वाणिज्य तथा व्यापार विकसित हुआ, बढ़ते हुए धन, समाज की रक्षा की भावना, आये दिन के युद्ध और शक्ति प्राप्त करने की इच्छा ने उच्च अधिकारियों के एक ऐसे वर्ग को जन्म दिया, जिससे आगे चलकर राज्य की उत्पत्ति हुई। धीरे–धीरे राज्यों का विकास हुआ तथा कुछ राज्यों ने अन्य राज्यों को अपने में मिलाकर साम्राज्य का रूप ले लिया। इस प्रकार सुमेरियन, असीरियन, भारत का साम्राज्य, ओर चीन के साम्राज्य विकसित हुए। सोल्टाऊ (Soltau) ने तो इन राज्यों के संबंध में यहां तक कहा है कि "राजनीति विज्ञान के विद्यार्थी के दृष्टिकोण से इन साम्राज्यों का महत्व बहुत कम है। उनमें बहुत कम ऐसी महत्वपूर्ण संस्थाओं का उदय हुआ, जो अध्ययन के योग्य हों तथा उन सब की विशेषताएं यह थी कि आन्तरिक दृष्टि से अस्वस्थ एवं पंगु थे।" (From the point of view of student of politics, those empire offer however little interest. Few of them evolved any significant institution that would help study and they were all characterized by an internal inertia amounting to something like paralysis.) गैटिल के शब्दों में, "इन महान साम्राज्यों ने संस्कृति की आधारशिला रखने में संकुचित एवं स्थानीय आधार पर तोड़ने में तथा मनुष्य जाति को व्यापक राजसत्ता से परिचित कराने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।" (These great empires performed valuable services in establishing the beginnings of culture, in breaking down the narrow local basis of tribal organization and in familiarizing mankind with wide spread authority.)

यूनानी नगर राज्य (The Greek City States)

राज्य के विकास की तीसरी महत्वपूर्ण अवस्था यूनान में मिलती है। यूनानियों का धर्म तथा जीवन के संबंध में दृष्टिकोण प्राकृतिक था और इस कारण उन्नति के मार्ग में कोई बाधा नहीं थी। यूनानियों ने अपने स्वावलम्बी और स्वशासित नगर राज्यों में कई प्रकार के राजनीतिक संगठनों को विकसित किया। इन सभी समाजों में विकास के तत्व निहित थे और कवेल स्पार्टा ही बराबर रूढ़ीवादी बना रहा। अन्य नगर राज्यों में राजनीतिक विकास का क्रम राजतंत्र से कुलींन तंत्र, कुलीनतंत्र से निरंकुशतंत्र और बाद में प्रजातंत्र था। यूनानी नागरिक अपने राजय के प्रति बहुत वफादार होते थे और नगर के सार्वजनिक जीवन में भाग लेना उनका एक महत्वपूर्ण लक्ष्य होता था। नागरिकता एक कर्त्तव्य तथा क व्यवसाय के रूप में थी। यूनान ने नगर राज्य में त्रुटियां भी थी। यह प्रमुख त्रुटियां थी :–

1. ये नगर राज्य दास प्रथा पर आधारित थे, जो अपने आप में अनेक बुराईयों की मूल थी।
2. स्थानीय प्रेम से पूर्ण इन नगर राज्यों में राष्ट्रीय भावना का पूर्ण रूप से अभाव था। इसी कारण उनमें कभी भी ऐसे समाज कि राजनीतिक चेतना का विकास नहीं हो पाया जो उन्हें राजनीतिक दृष्टि से एक सूत्र में बांधे।

वैदिककालीन गणराज्य (Vedic Republics)

जिन दिनों यूनान में नगर राज्य थे, उन्हीं दिनों भारत में भी छोटे–छोटे गणराज्य पाये जाते थे। जिन्हें वैदिककालीन गणराज्य कहा जाता था। वैदिककालीन गणराज्यों के संबंध में यद्यपि नगर राज्यों के समान विस्तृत विवरण प्राप्त नहीं है, फिर भी यह कहा जा सकता है कि इन गणराज्यों की शासनप्रणाली सर्वत्र एक–सी नहीं थी। ये गणराज्य दो प्रकार के थे।

1. प्रथम प्रकार के गणराज्यों में सब नागरिक राज्य की शासन व्यवस्था में प्रमुख रूप से भाग लेते थे।

2. दूसरे प्रकार के गणराज्य वे थे जिनमें प्रमुख परिवारों के मुखिया सामूहिक रूप से राजार्य का संचालन करते थे।

रोमन साम्राज्य (The Roman Empire)

यूनान के राज्यों की भांति रोम के राजनीतिक जीवन का प्रारम्भ भी एक नगर राज्य के रूप में हुआ था। प्रारम्भ मे इन नगर राज्यों का कोई विशेष महत्व नहीं था, पर अपनी केन्द्रित स्थिति और देश की एकमात्र जहाजरानी के योग्य महत्वपूर्ण ननदी पर स्थित होने के कारण यह नगर राजय बहुत शीघ्र ही एक प्रधान राज्य बन गया। पहले उसने इटली के नगर राज्यों को अपने में मिलाया और फिर धीरे–धीरे फ्रांस, स्पेन, इंग्लैण्ड, जर्मनी जादि यूरोपीय देशों में ही अपना साम्राज्य स्थापित किया, उसने ग्रीक, मिस्र और एशिया माइनर, आदि दूर स्थित प्रदेशों को भी जीतकर अपने राज्य में शामिल कर लिया।

साम्राज्य को एक सूत्र में बांधे रखने के लिए एक प्रभावपूर्ण केन्द्रीय शासन और नियंत्रण की व्यवस्था की गयी। जीते हुए भू–भाग 'प्रदेशों' में बांट दिये गये और हर 'प्रदेश' में एक रोमन अधिकारी, जिसे प्रोकॉन्सल (Proconsul) कहते थे, राजनीतिक तथा नागरिक अधिकारों के संबंध में पूर्ण अधिकार प्रदान किये गये। स्वयं रोम में गणतंत्र का स्थान तानाशाही सैनिक शासन ने ले लिया और साम्राज्य सर्वशक्तिमान बन गया। संसार को सबसे पहले सुव्यवस्थित और सुशासित राज्य देने का गौरव स्थायी रूप से रोम को प्राप्त है। रोम का शासन पश्चिम में 5000 वर्ष तक और पूर्व में 1500 वर्ष तक कायम रहा। रोम साम्राज्य के ढांचे के आधार पर ही कैथोलिक धर्म संघ में अपना संगठन स्थापित किया और रोम की व्यवस्था देखकर ही पूरे मध्य युग में एक विश्वव्यापी साम्राज्य की भावना लोगों के मस्तिष्क में घूमती रही। रोमन विधि, उसके उपनिवेश और नगर पालिकाओं की शासन व्यवस्था, आधुनिक युग को रोमन साम्राज्य से वसीयत में मिली है। प्रभुसत्ता और नागरिकता के आदर्श और विभिन्न जातियों में राजनीतिक एकता स्थापित करने की पद्धतियां रोमन साम्राज्य की महत्वपूर्ण देने हैं।

रोमक साम्राज्य की कमिया (Weakness of the Roman Empire)

इतना होते हुए भी रोमन साम्राज्य में कुछ आधारभूत कमियां थी जिनका वर्णन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है :–

1. सबसे प्रमुख दोष यह था कि रोमन साम्राज्य की शक्ति अव्यवस्थित थी। रोम की सेना शक्तिशाली होने के साथ–साथ अनियंत्रित थी।
2. इस अव्यवस्थित शक्ति का परिणाम यह हुआ कि रोम का जनतंत्र तानाशाही में बदल गया।
3. अन्य दोषों में दास प्रथा प्रमुख थी, जो साम्राज्य के इतने उन्नत होने पर भी उसमें प्रचलित थी। गैटेल ने ठीक लिखा है कि "यूनान ने बिना एकता के प्रजातंत्रवाद का विकास किया था, रोम में बिना प्रजातंत्र के एकता की प्राप्ति की।
4. रोमन साम्राज्य के पतन के अन्य कारण थे शासन की कठोरता।
5. उच्च वर्गों का नैतिक पतन, तथा महामारियां आदि।
6. कमजोर आर्थिक आधार।

7. धार्मिक अव्यवस्था और बर्बर जातियों के हमले।

सामन्तवादी राज्य (The Feudal State)

राज्य के विकास क्रम में सार्वभौमिक साम्राज्य के बाद सामन्तवादी राज्य आते हैं। कुछ ऐसा दौर चला कि जिस किसी के पास थोड़ी बहुत सम्पति थी, उसी ने अपना राज्य स्थापित कर लिया और वह सामान्त बन बैठा। इस प्रक्रिया के द्वारा सामान्तवादी राज्य अस्तित्व में आये। सामान्तवादी राज्यो का संगठन एक श्रृंखला के समान होता था, जिसका सबसे ऊंची कड़ी राजा तथा सबसे नीची कड़ी दास होते थे। जब कोई विजेता सरदार किसी प्रदेश पर अधिकार जमाता था, तो वह उस प्रदेश को अपने साथियों में बांट देता था। वह स्वयं राजा तथा प्रदेश के उन भागों को प्राप्त करने वाले उसके साथी सामान्त हो जाते थे। ये सामन्त लोग अपनी–अपनी जागीर के पूर्ण स्वामी होते हुए भी राजा के अधिकार में होते थे और आवश्यकता के समय राजा को सैनिक तथा वित्तीय सहायता प्रदान करते थे। इस प्रकार सामन्तवादी राज्य की स्थिति एक 'पिरामिड' के समान थी जिसमें सबसे ऊपर राजा उसके नीचे सामन्त, उसके नीचे जागीरदार और सबसे नीचे दास होते थे। सामन्तवाद का इतिहास सभी देशों में शोषण प्रधान रहा है। इसके अलावा ये राज्य बहुत अधिक निर्बल थे।" एडम (Adam) ने तो यहां तक लिखा है कि सामन्तवादी प्रथा एक भद्दे ढंग से संगठित व्यवस्था थी। इन्हीं दोषों के कारण सामन्तवाद का पतन हो गया और उसके स्थान पर राष्ट्रीय राज्यों की स्थापना हुई।

धर्म साम्राज्य (Holy Empire)

सामन्तिक स्वरूप के बाद राज्य ने एक और नवीन स्वरूप धारण किया, जिसे हम धर्म साम्राज्य कह सकते हैं और जिसके उदाहरण स्वरूप रोम के धार्मिक साम्राज्य को ले सकते हैं। सामन्तिक–राज्यों के समय मे ंभी विविध राजाओं में परस्पर संघर्ष चलता रहा और प्रत्येक राजा अन्यों से अधिक शक्तिशाली होने के लिए प्रयत्नशील रहा। विभिन्न सामन्तों एवं राजाओं के इस संघर्ष में सबसे अधिक सफलता शार्लमेन नामक राजा को मिली और उसने फ्रांस, बेल्जियम, हॉलैंड, जर्मनी तथा आस्ट्रिया आदि के अतिरिक्त इटली के रोम नगर पर भी अधिकार जमा लिया। यह नौंवी शताब्दी के प्रांरभ में हुआ।

यद्यपि रोम का राजनैतिक सार्वभौम साम्राज्य समाप्त हो चुका था, तथापि उसके स्थान पर उसके धार्मिक साम्राज्य का उदय हो गया था। इसाई चर्च जिसके अनुयायी रोम के संपूर्ण निवासी बन चुके थे, राजनैतिक रूप से छिन्न–भिन्न हो जाने पर भी रोम साम्राज्य को धार्मिक एकता में बांधे रखा। ईसाईयों का सबसे प्रमुख मठ रोम में था और उसके अध्यक्ष पोप को सब ईसाई अपना धर्म गुरू मानते थे। अतः आठ सौ ईसवी में रोम के पोप लियो तृतीय ने शार्लमेन का पवित्र रोम सम्राट के रूप में राज्यभिषेक किया तथा इस प्रकार पवित्र रोमन साम्राज्य की स्थापना हुई।

आधुनिक काल (Modren Era)

राष्ट्रीय राज्य (Nation State)

राज्य ने जब अपने माध्यमिक काल को पार कर आधुनिक युग में पदार्पण किया तो उसमें एक और नवीन प्रकार के राजय का प्रादुर्भाव हुआ जिसे हम राष्ट्रीय राज्य कहते हैं। सामन्तिक राज्यों तथा रोम के धार्मिक राज्य की स्थापना होते हुए भी राजाओं के पारस्परिक संघर्ष बन्द न हो सके और सभी राज्य अपने–अपने को दूसरे से शक्तिशाली बनाने की चेष्ठा में रत रहे। इसी प्रकार के वातावरण में कुछ ऐसे शक्तिशाली राजाओं का प्रादुर्भाव हुआ, जिन्होंने छोटे–छोटे सामन्तों को पूरी तरह काबू में करके एकतंत्र शासन स्थापित किये। सत्रहवीं शताब्दी तक लगभग सम्पूर्ण यूरोप में ऐसी स्थिति आ गई कि सामन्त–पद्धति के स्थान पर एकतंत्रात्मक पद्धति का अस्तित्व हो गया और फ्रांस, इंग्लैड,

रूस तथा स्पेन आदि प्रायः सभी देशों में शक्तिशाली राजाओं ने अपने–अपने सामन्तों को अपने काबू में करके, अपनी सत्ता को पूर्णतया स्थापित कर लिया। उदाहरणार्थ, इंग्लैंड में हेनरी आठवां, फ्रांस में लुई चौदहवां, स्पेन में फिलिप द्वितीय तथा रूस में पीटर जैसे शक्तिशाली राजाओं के राज्य स्थापित हो गये। एक शासन में रहने के कारण लोगों के एक से हित हो गए, उनमें एक से स्वार्थ हो गये, एक–सा जीवन बन गया और कहीं–कहीं एक–सी भाषा भी हो गई। परिणाम यह हुआ कि उनमें उस एकता की भावना का विकास हुआ, जिसके आधार पर राष्ट्रीय राज्यों का निर्माण हुआ। उदाहरणार्थ, फ्रांसीसी राजाओं द्वारा शासित सब प्रदेश एक जैसे थे, उनकी एक संस्कृति थी, और वे अपना देश समझते थे। परिणाम यह हुआ कि धीरे–धीरे फ्रांस एक राष्ट्र बनने लगा और उसके निवासियों में राष्ट्रीयता की भावना का विकास होने लगा।

राष्ट्रीय–राज्य सामन्तिक राज्यों से तो भिन्न थे क्योंकि इनके निर्माण में एक नवीन भावना कार्य कर रही थी और वह थी कि भाषा, धर्म, रीति रिवाज, परम्परा तथा संस्कृति आदि की एकता के कारण जिस क्षेत्र के निवासियों में परस्पर एकानुभूति पाई जाती है, उनका एक पृथक राज्य होना चाहिए।

प्रजातांत्रिक राष्ट्रीय राज्य (Democratic Nation State)

राज्य के विकास क्रम का वर्तमान स्वरूप प्रजातंत्रात्मक राष्ट्रीय राज्य है, जिसका उदय राजतंत्रात्मक राष्ट्रीय राज्य से हुआ है। राजतंत्रात्मक राष्ट्रीय राज्यों का स्वरूप निरंकुश शासन तंत्र का था। उनमें शासन संबंधी यह सिद्धान्त प्रचलित था कि 'राजा पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि' है, अतः उसका शब्द कानून है तथा इच्छा न्याय है और उसका विरोध करने का अर्थ ईश्वर का विरोध करना है। अठाहरवीं शताब्दी में यूरोप में अनेक ऐसे विचारक उत्पन्न हुए, जिन्होंने राजा के दैवी स्वरूप और उसके दैवीय अधिकार के सिद्धांत का विरोध किया और मनुष्य के महत्व पर जोर देते हुए, लोकतंत्रात्वाद का समर्थन किया। अब यह विचार संपूर्ण राजनैतिक विचारधारा का सार बन गया है कि राष्ट्रीयता की दृष्टि से जो लोग एक हैं, उनका पृथक राज्य होना चाहिए और उनमें शासन का स्वरूप लोकतंत्रात्मक स्वतंत्रता, नागरिकता के अधिकार और राष्ट्रीय एकता को अत्यधिक महत्व दिया जाता है।

1.2.6 राज्य का भावी विकास व विशेषताएं (Future Development of the State)

राज्य के विकास के पश्चात् यह देखना भी आवश्यक है कि उसका भविष्य क्या हो सकता है? भूतकाल का परिणाम वर्तमानकाल होता है और वर्तमानकाल में भविष्य के बीज नीहित रहते हैं, यह सभी जानते हैं। राज्य के सम्पूर्ण विकास पर यदि हम एक दृष्टि डाले तो हम देखते हैं कि उसका विकास मुख्यतः तीन दिशाओं में हुआ तथा हो रहा है– प्रथम आकार की दिशा में, राज्य के भावी विकास में आकार का नहीं, अपितु राज्य की शासन–प्रणाली एवं कार्य–क्षेत्र का महत्व होगा। अठाहरवीं शताब्दी में लोकतंत्रवाद का जो स्वरूप हमारे समक्ष आया था वह अब बदल चुका है और निरंतर बदल रहा है। उस समय का लोकतंत्रवाद केवल राजनैतिक लोकतंत्रवाद था किन्तु उसका रूप अब बदल गया है। और सामाजिक एवं आर्थिक लोकतंत्रवाद भी उसमें सम्मिलित हो गया है। राष्ट्रीयता के स्थान पर अंतर्राष्ट्रीय एवं सह अस्तित्व के सिद्धातों पर राज्य का भारी विकास होगा। यदि यह संभव न हो सका तो वह विकास नहीं विनाश होगा। राष्ट्रीय राज्यों के स्थान पर एक विश्व संघ की स्थापना की जानी चाहिए। अंतर्राष्ट्रीय के महान् समर्थक हैराल्ह लॉस्की का विचार है कि "अंतर्राष्ट्रीय मामलों में राज्यों की प्रभुसत्ता धीरे–धीरे समाप्त होती जा रही है, अब राष्ट्रीय राज्यों की उपयोगिता समाप्त हो चुकी है। आज के व्यक्ति को साम्राज्यवादी धारणा की नहीं वरन् संघवाद की आवश्यकता है।"

ऊपर दिए गए राज्य के विकास के उल्लेख से यह नितान्त स्पष्ट है कि राज्य के विकास की कुछ विशेषताएं

रही हैं जो निम्नलिखित हैं –

1. **राज्य का विकास सरलता से जटिलता की ओर (Development of the State from Simplicity to Complexity)** – राज्य का प्रारंभिक संगठन बहुत अधिक सरल था लेकिन मानव जीवन के विकास के साथ–साथ राज्य का संगठन जटिल होता गया और राज्य के कार्य बदलते चले गये।

2. **राज्यों के क्षेत्र और जनसंख्या में वृद्धि (Increase in area and Population of States)** – प्रारम्भ में राज्य का क्षेत्र छोटा था और राज्यों की जनसंख्या कम थी, परन्तु समय के साथ–साथ राज्यों की जनसंख्या और उनका क्षेत्र बढ़ते चले गये। आधुनिक राष्ट्रीय राज्य लाखों वर्गमील क्षेत्र में फैले हुए हैं और उनमें से कुछ की जनसंख्या तो करोड़ों में है। जैसे – भारत जिसकी जनसंख्या 105 करोड़ के लगभग है।

3. **राजनीतिक चेतना का विकास (Development of the Political Consciousness)** – राज्य के विकास के साथ–साथ नागरिकों में राजनीतिक चेतना का भ्झी विकास होता गया। लोग धीरे–धीरे समझ गए कि राज्य के बिना कोई भी कार्य ठीक प्रकार से पूरा नहीं हो सकता। राजनीतिक चेतना के इस विकास ने प्रतिनिधि प्रजातंत्र और संघात्मक राज्य जैसे राज्य और शासन के नवीन रूपों को ढूंढ निकाला और आज की बदली हुई परिस्थितियों के अनुसार राज्य के स्वरूप और संगठन में परिवर्तन करने के संबंध में विचार किया जा रहा है।

4. **राज्य का धर्म से अलग होना (Separation of State with Religion)** – राज्य के विकास के प्रारम्भिक स्तरों पर राज्य और धर्म एक–दूसरे से संयुक्त थे और साधारणतया शासकों व धर्माधिकारियों के द्वारा एक दूसरे के साथ सक्रिय सहयोग किया जाता था, परंतु वर्तमान समय में राज्य और धर्म एक–दूसरे से अलग हो गए हैं। आज 'धर्म निरपेक्ष राज्य' के विचार को मान्यता प्राप्त है, जिसके अनुसार राज्य के द्वारा व्यक्तियों के धार्मिक जीवन में हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए।

5. **प्रभुसत्ता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता में संबंध (Compromise between Soverrignity and Liberty)** – राज्य के विकास के प्रारम्भिक स्तरों पर सामान्यतया निरंकुश शासन व्यवस्थाएं थी, जिनमें राज्य की शक्ति के सामने व्यक्तिगत स्वतंत्रता को स्थान प्राप्त नहीं था। परंतु राज्य के विकास के साथ–साथ यह समझा गया कि पांच प्रवृतियों के अलावा कुछ और भी प्रवृतियां देखी जा सकती है।

6. **विश्वसंघ की स्थापना (Establishment of World Federation)** – आज समस्त विश्व के सामने यह बात स्पष्ट हो गई है कि राष्ट्रीय राज्य सम्पूर्ण मानवता के हितों की दृष्टि से ठीक नहीं है और जिस प्रकार छोटे–छोटे राज्यों ने मिलकर एक संघ की स्थापना की। उसी प्रकार विश्व में शांति स्थापित करने और विकास की दिशा में आगे बढ़ने के लिए एक विश्व संघ की स्थापना की जा सकती है और ऐसा किया जाना चाहिए।

1.2.7 निष्कर्ष

1.2.8 मुख्य शब्दावली

1.2.9 अभ्यास हेतू प्रश्न

1. राज्य के ऐतिहासिक विकास की संक्षिप्त विवेचना कीजिए।

   (Discuss briefly the historical evolution of State.)

2. आधुनिक राष्ट्रीय राज्यों के ऐतिहासिक विकास की व्याख्या करें।

(Explain the historical development of the Modern Nation States.)

1.2.10 संदर्भ सूची

- N.P. Barry. Introduction to Modem Political Theory, London, Macmillan, 1995.
- M. Carnoy, The State and Political Theory, Princeton NJ, Princeton University Press, 1984.
- G. Catlin, A Study of the Principles of Politics, London and New York, Oxford University Press, 1930.
- N.J. Hirschman and C.D. Stefano (eds.), Revisioning the Political Feminist Reconstruction of Tradition concepts in Western Political Theory, West View Press, Harper Collins, 1996.
- D. Heater, Citizenship: The Civic Ideal in World History, Political and Education, London, Orient Longman, 1990.
- D. Held, Models of Democracy, Cambridge, Polity Press, 1987, G Mclellan, D. Held and S. Hall (eds.), The Idea of the Modem Slate, Milton Keynes, Open University Press, 1984.
- D. Miller, Social Justice, Oxford, The Clarendon Press, 1976.
- D. Miller, (ed.), Liberty, Oxford, Oxford University Press, 1991.
- D. Miller, Citizenship and National Indentities, Cambridge, Polity Press, 2000.
- S. Ramaswamy, Political Theory: Ideas and concepts, Delhi Macmillan, 2002.
- R.M. Titmuss, Essays on the Welfare State, London, George Allen and Unwin, 1956.
- F. Thakurdas. Essays on Political Theory, New Delhi, Gitanjali, 1982.
- J. Waldron(ed.), Theories of Rights, New Delhi, Oxford University Press 1984.
- S. Wasby, Political Science: The Discipline and its Dimensions, Calcutta, Scientific Book Agency, 1970.

1.3 राज्य की उत्पत्ति के मुख्य सिद्धान्त – दैवी सिद्धान्त, शक्ति सिद्धान्त, पैतृक सिद्धान्त, मातृक सिद्धान्त (Major Theories of the Origin of State – Divine Theory, Force Theory, Patriarchal and Matriarchal Theories)

1.3.1 परिचय

राज्य की परिभाषा तथा उसके तत्वों के अध्ययन के बाद यह प्रश्न उठता है, कि राज्य का जन्म कब और कैसे हुआ? प्रारम्भ से ही मनुष्य की जिज्ञासा व प्रवृति इस विषय को जानने की रही है कि राज्य की उत्पति कब और कैसे हुई? इस प्रश्न का उत्तर इतिहास की सहायता से मिलना कठिन है। गार्नर (Garner) का कथन है, कि "वे परिस्थितियां जिनमें आदिम मनुष्यों ने सर्वप्रथम राजनीतिक चेतना का प्रकाश देखा, और ये किसी प्रकार के राजनीतिक संगठन के रूप में एकत्रित हुए, ऐसे तथ्य हैं, जो पूर्णतः नहीं तो अधिकांशतः अस्पष्टता के कोहरे से ढके हैं।" (The Circumstances under which primitive men first saw the light of political consciousness and came to associate themselves together under some form of political organization are facts veiled largely, if not wholly, in the mists of obscurity.)। यही कारण है कि राज्य की उत्पत्ति के विषय में उचित ज्ञान हम इतिहास से नहीं जान सकते। हमें इस विषय को जानने के लिए कल्पना (Imagination or Speculation) का सहारा लेना पड़ता है। गिलक्राइस्ट के शब्दों में "उन परिस्थितियों के बारे में जो राजनीतिक चेतना के उदय को घेरे हुए हैं, इतिहास हमें कुछ नहीं बताता। जहां इतिहास असफल हो जाता है, वहां हम कल्पना का सहारा लेते हैं।" (Of the circumstances surrounding the dawn of consciousness we know little or nothing from history. Where history fails, we resort to speculation.)

1.3.2 उद्देश्य

इस प्रकार कल्पना के आधार पर राज्य की उत्पत्ति के कई सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। राज्य की उत्पत्ति से संबंधित मुख्य सिद्धान्त निम्नलिखित हैं :–

1. दैवी सिद्धान्त (Divine Theory)
2. शक्ति सिद्धान्त (Force Theory)
3. पैतृक सिद्धान्त (Patriarchal Theory)
4. मातृक सिद्धान्त (Matriarchal Theory)

अब हम सभी सिद्धान्तों का बारी–बारी से अध्ययन करेंगे :–

1. राज्य की उत्पत्ति व राजनीतिक परम्पराओं की आवश्यक विशेषताओं को समझ पाऐंगें।
2. राज्य के सिद्धातों की व्याख्या कर पायेंगें।
3. राज्य की उपलब्धियों और विफलताओं का मूल्याकंन कर पायेंगे।
4. आधुनिक राजनीतिक विज्ञान के संदर्भ में उनकी प्रासंगिकता का आकलन कर पायेंगें।

1.3.3 दैवी उत्पत्ति का सिद्धान्त

राज्य की उत्पत्ति के संबंध में प्रचलित दैवी उत्पत्ति का सिद्धान्त सबसे प्राचीन है। इस सिद्धान्त के अनुसार राज्य

ईश्वर द्वारा स्थापित माना जाता है। ईश्वर राज्य में या तो स्वयं शासन करता है, या किसी प्रतिनिधि को इस कार्य के लिए नियुक्त करता है, जो ईश्वर की ओर से शासन करता है। राजा, ईश्वर का प्रतिनिधि होने के नाते केवल उसी (ईश्वर) के प्रति उत्तरदायी है और प्रत्येक परिस्थिति में राजा की आज्ञाओं का पालन करना प्रजा का कर्त्तव्य है।

दैवी उत्पत्ति के सिद्धान्त का विकास (Development of Divine Theory)

इस सिद्धान्त का मुख्य समर्थन धार्मिक ग्रन्थों में मिलता है। यहूदी धर्म के अनुसार राजा ईश्वर के द्वारा नियुक्त किया जाता है, तथा वही ईश्वर राजा को गद्दी से हटा सकता है। ब्लंशली ने कहा है, "राजा ईश्वर की कृति है और पृथ्वी पर दैवी सरकार का प्रकाशन है।" (The State is immediate work of God, the powers that be, are obtained by God. Whosever resisteth the power, resisteth the Ordinance of God, and that they resist, shall receive themselves damnation.)।

दैवी सिद्धान्त का प्रमुख समर्थक इंग्लैंड का राजा जेम्स प्रथम था। उस ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'लॉ ऑ फ्री मोनार्की' में इस सिद्धान्त का विस्तार से वर्णन किया है। उसके अनुसार राजा अपनी शक्ति और अधिकार ईश्वर से प्राप्त करता है और इसलिए वह अपने कार्यों के लिए प्रजा के प्रति उत्तरदायी नहीं है। वह कानून से ऊपर है। अपने सभी कार्यों और विशेषकर शासन संबंधी कार्यों के लिए वह ईश्वर के प्रति उत्तरदायी है। उसका अपनी जनता पर पूर्ण अधिकार है। प्रजा को किसी भी स्थिति में विद्रोह करने का अधिकार नहीं है। जेम्स प्रथम ने स्वयं ही कहा है, कि "राजाओं को देवता कहना उचित है, क्योंकि पृथ्वी पर उनकी और ईश्वरीय शक्ति की समानता है। जिस प्रकार 'ईश्वर क्या कर सकता है', इस पर विचार करना अनास्तिकता व अधर्म है। उसी प्रकार 'राजा क्या कर सकता है', इस पर विवाद अथवा यह कहना कि राजा यह अथवा वह कार्य नहीं कर सकता, प्रजा के लिए धृष्टता तथा अवज्ञापूर्ण है। राजा भूमि पर ईश्वर की जीती जागती प्रतिमा है।" (Kings are justly called Gods, as they exercise a manner of resemblance of divine power on earth. As it is a theism and blasphemy to dispute what God can do, as it is presumptious and high contempt in a subject to dispute what a king can do or to say that a king can not do this or that. Kings are breathing images of God upon earth.)।

जहां दैवी सिद्धान्त को यूरोप में समर्थन मिला वहां भारत, अरब, चीन, जापान और मिश्र आदि देशों में भी इस सिद्धान्त को मान्यता दी गई। महाभारत में राज्य के दैवी स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा गया है, कि "राज्य का निर्माण वरूण, इन्द्र, अग्नि आदि देवताओं के अंश लेकर किया गया – राजा देवता है, इन्द्र है, शुक्र है, और बृहस्पति है। सबको रास्ता दिखाने वाला है सबका पूजनीय है।" अतः स्पष्ट है कि भारत में दैवी सिद्धान्त को ही प्राथमिकता दी गई। ईस्लाम धर्म राज्य को ईश्वरीय संस्था मानता है। जापान में तो राजा को सूर्य पूत्र समझा जाता है संक्षेप में, राजाओं के दैवी अधिकार के सिद्धान्त की विशेषताएं निम्नलिखित हैं :–

1. **राजसत्ता ईश्वरीय देन है (Power of the king is derived from God)** – इस सिद्धान्त के अनुसार राजा पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि है। (Kings are breathing images of God upon earth.)।
2. **उत्तरदायी नहीं (No Responsibility)** – सम्राट लोगों के प्रति उत्तरदायी नहीं है। (No responsibility of kings towards people.)। राजा को ईश्वर ने नियुक्त किया है। इसलिए वह अपने कार्यों के लिए लोगों की अपेक्षा ईश्वर के प्रति उत्तरदायी है।
3. **कानून से ऊपर (Above Law)** – सम्राट कानून से ऊपर है (Kings are above Law)। सम्राट स्वयं कानून का स्त्रोत है तथा कानून सम्राट की ही देन है। सम्राट कानून के अधीन न होकर उससे ऊपर है।

4. **वंशानुगत (Hereditary)** – राजतंत्र वंशानुगत है। (Kingship is Hereditary)। सम्राट का निर्वाच्न जनता द्वारा नहीं होता अपितु वह पैतृक है। अन्य शब्दों में, पिता की मृत्यु के पश्चात् उसका बड़ा पुत्र ही राजगद्दी पर बैठता है।

5. **निरंकुश अधिकार (Absolute Rights)** – सम्राट के अधिकार निरंकुश है। (Absolute Rights of Kings exist)। वह प्रजा के ऊपर, जीवन तथा मृत्यु का अधिकार रखता है। सम्राट मृत्यु–दंड तक दे सकता है।

6. **पाप (Sin)** – सम्राट के आदेशों का उल्लंघन पाप है। (Violation of King's order is sin)। राजा पृथ्वी पर ईश्वर का स्वरूप है। फलतः जनता को उसका विरोध करने का अधिकार नहीं है। राजज्ञा का विरोध तथा उल्लंघन करना महापाप है।

दैवी सिद्धांत की कड़ी आलोचना की गई है जिनमें से मुख्याधार निम्नलिखित हैं :–

1. **मानवीय संस्था (Human Institution)** – राज्य दैवी संस्था न होकर मानवीय संस्था है (State is a human institution not a divine institution)। आधुनिक लेखक राज्य को दैवी संस्था नहीं मानते। वास्तव में राज्य एक मानवीय संस्था है, जो मनुष्य की प्राकृतिक भावनाओं तथा आवश्यकताओं पर आधारित है। अरस्तु का कहना है कि राज्य जीवन रक्षा के लिए बना और जीवन को सुखी बनाने के लिए विद्यमान है। राज्य के कानून मनुष्य ही बनाते हैं। और मनुष्यों के लिए ही उन्हें लागू किया जाता है। राज्य का विकास हुआ है। गिलक्राइस्ट ने ठीक ही लिखा है कि "यह धारणा की ईश्वर इस या उस मनुष्य को राजा बनाता है, अनुभव एवं साधारण ज्ञान के सर्वथा विरूद्ध है।" (To say that God selects this or that man as a ruler is contrary to experience and common sense.)

2. **अनऐतिहासिक अथवा अतार्किक (Unhistorical or illogical)** – यह सिद्धान्त अनऐतिहासिक अथवा अतार्किक है (It is Unhistorical or illogical)। राज्य को दैवी संस्था नहीं माना जा सकता क्योंकि इतिहास में ऐसा कोई प्रमाण नहीं दे सकता कि उसकी नियुक्ति ईश्वर ने की है। इतिहास में अनेक ऐसे राजाओं का उल्लेख मिलता है जिन्होंने प्रजा पर अमानवीय अत्याचार किये। एक निर्दयी राजा होने का अर्थ यह है कि या तो ईश्वर सर्वज्ञानी नहीं है, अथवा राजा ईश्वर का प्रतिनिधि नहीं है, क्योंकि सर्वज्ञानी ईश्वर निर्दयी राजा का चुनाव नहीं कर सकता।

3. **अवैज्ञानिक (Unscientific)** – डार्विन (Darwin) ने विकासवादी सिद्धान्त के आधार पर यह सिद्ध किया है कि विश्व में कोई भी वस्तु ईश्वर द्वारा निर्मित नहीं, वरन् ऐतिहासिक विकास का ही परिणाम है। इस दृष्टि से दैवी सिद्धान्त पूर्णरूप से अवैज्ञानिक हो जाता है। फिगिस (Figgs) के शब्दों में "यह सिद्धान्त केवल विश्वास के आधार पर स्वीकार किया जा सकता है। तर्क के आधार पर नहीं।"

4. **आधुनिकराज्यों पर लागू नहीं (Not applicable in the Modern Times)** – यह सिद्धान्त आधुनिक राज्यों पर लागू नहीं होता (It is not applicable in the Modern Times)। आज संसार के अधिकतर देशों में लोकतंत्र पाया जाता है, जहां प्रधानमंत्री अथवा राष्ट्रपति होता है, राष्ट्रपति तथा प्रधानमंत्री ईश्वर के प्रतिनिधि न होकर जनता के प्रतिनिधि होते हैं। गिलक्राइट के अनुसार, "आधुनिक राष्ट्रपति के लिए, जो जनता द्वारा चुना जाता है यह दावा करना कठिन होता है कि उसे अपने अधिकार ईश्वर से मिले हैं।"

5. **लोकतंत्र के विरूद्ध (Against Democracy)** – यह सिद्धान्त लोकतंत्र के विरूद्ध (It is against Democracy)।

लोकतंत्र में सभी नागरिकों को समान अधिकार प्राप्त होते हैं और उन्हें शासन में भाग लेने का समान अधिकार प्राप्त होता है। परंतु दैवी सिद्धान्त सभी नागरिकों को समान नहीं मानता और न ही उन्हें समान पद देने के पक्ष में है।

6. **खतरनाक (Dangerous)** – दैवी सिद्धांत खतरनाक सिद्धांत है (Divine Theory is dangerous)। दैवी सिद्धांत राजाओं को निरंकुश शक्तियां देता है। इसके अनुसार राजा की आज्ञा ही कानून है, और मनुष्यों का कर्त्तव्य इनर्त्तव्य इन कानूनों का पालन करना है। राजा के विरूद्ध विद्रोह करने का अधिकार प्राप्त नहीं है। राजा कितना भी अत्याचारी क्यों न हो उसे हटाया नहीं जा सकता।

7. **नास्तिकों के लिए महत्वहीन (Not Acceptable to Atheists)** – बहुत से लोग नास्तिक होते हैं जो ईश्वर में विश्वास ही नहीं करते, ऐसे नास्तिक लोगों के लिए यह सिद्धांत महत्वहीन है।

8. **राज्य साध्य नहीं है (State is not an end)** – दैवी सिद्धांत राज्य को साध्य तथा मनुष्यों को साधन मानता है। परंतु यह गलत है। राज्य साध्य नहीं अपितु मनुष्यों की भलाई के लिए एक साधन है।

9. **धार्मिक सिद्धांत, राजनीतिक नहीं (This Theory is theoratic, not Political)** – दैवी उत्पत्ति का सिद्धांत मुख्यतः एक धार्मिक सिद्धांत है, जिसका संबंध धर्म से है। यह राज्य की उत्पति की सही व्याख्या नहीं करता। धर्म में अंध–विश्वास चल सकता है, राजनीति में नहीं। राजनीति में विवेक की आवश्यकता होती है।

रिचर्ड हूकर (Richard Hooker) ने इस संबंध में ठीक ही लिखा है कि "धर्म का संबंध मनुष्य के विश्वास से होता है। राजनीतिक बातों के संबंध में मनुष्य को अपनी बुद्धि पर निर्भर रहना चाहिए, विश्वास पर नहीं।"

संक्षेप में दैवी सिद्धांत राज्य की उत्पति की संतोषजनक व्याख्या प्रस्तुत करने में पूरी तरह से असफल रहा है।

दैवी सिद्धांत का महत्व (Importance of Divine Theory)

यद्यपि दैवी सिद्धांत अस्वीकार किया जा चुका है और वर्तमान समय के राजनीतिक विचारों में इसे कोई महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं है। लेकिन मानवीय इतिहास के प्रारंभिक काल में जब मनुष्य अपने जीवन के प्रत्येक कार्य को धर्म से जोड़कर देखता था, तब यह सिद्धांत अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ। उस समय इस सिद्धांत ने अराजकता को रोकने और शांति व्यवस्था स्थापित करने के लिए सामान्य जनता में कानून और शासन के प्रति निष्ठा उत्पन्न की और लोगों को राजभक्ती एवं आज्ञापालन का पाठ पढ़ाया। गैटल ने सत्य लिखा है कि "जब लोग अपने ऊपर शासन करने में समर्थ नहीं थे, उस समय इस सिद्धांत ने उन्हें आज्ञा पालन का पाठ पढ़ाया।"

1.3.4 शक्ति सिद्धांत (Force Theory)

इस सिद्धांत के अनुसार राज्य एक ईश्वरीय संस्था नहीं वरन् एक मानवीय संस्था है। राज्य उच्च शक्ति का परिणाम है, और इसकी उत्पति शक्तिशाली व्यक्तियों द्वारा दुर्बल व्यक्तियों को अपने अधीन करने की प्रवृति से हुई है। मानवीय विकास के प्रारंभिक काल में जो व्यक्ति शक्तिशाली होता था, वह अपनी शक्ति के प्रयोग द्वारा अन्य कमजोर व्यक्तियों को हराकर अपने अधीन कर लेता था। इस प्रकार अपने अनुयायियों की संख्या बढ़ाकर वह कबीले का नेता बन जाता था, और ज बवह अपने कबीलों की सहायता से अन्य दुर्बल या कमजोर कबीलों को अपने अधीन करना प्रारंभ करता था। विजय तथा अधीनता की इस प्रक्रिया का अंत उस समय होता था, जब विजयी कबीले के पास अपना एक निश्चित प्रदेश हो जाता था। यहीं से राज्य की उत्पति हुई। लीकॉक के मतानुसार, "ऐतिहासिक दृष्टि से इसका यह

अभिप्राय है कि सरकार आक्रमण का फल है। राज्य का श्रीगणेश मनुष्य द्वारा मनुष्यों को पकड़ने तथा दास बनाने में और बकीलों पर शक्तिशाली कबीले की विजय से हुआ।" इसी बात को लक्ष्य करते हुए वाल्टेयर ने लिखा है कि "प्रथम राजा एक भाग्यशाली योद्धा था।" (The first King was a fortunate warrior.)। ऐसा प्रतीत होता है कि राज्य की उत्पति उस समय हुई होगी, जब किसी मानव ने शक्तिशाली होकर अपने अनुयायियों पर अधिकार जमाकर उन पर अपना शासन लादा होगा। इस संबंध में प्रसिद्ध विद्वान जेंकस ने इस तथ्य का समर्थन इन शब्दों में किया है कि "ऐतिहासिक आधार पर यह सिद्ध करने में तनिक भी कठिनाई नहीं कि आधुनिक राजनैतिक समाजों का मूल सफल युद्ध में हैं।" (Historically speaking, there is not the slightest difficulty in proving that all political community of the modern type wone their existence to successful warfare.) इसी प्रकार एक अन्य विद्वान विडरो विल्सन का कथन है कि अपने अंतिम विश्लेषण में सरकार एक संगठित बल है"। (Government in its analysis is an organized force.) राजनीति–शास्त के प्रसिद्ध विद्वान् लीर्काक का कथन है कि "ऐतिहासिक दृष्टि से इसका यह तात्पर्य है कि सरकार मानव आक्रमण का परिणाम है। राज्य का प्रारम्भ मनुष्य द्वारा मनुष्यों को पकड़ने तथा दास बनाने और कबीलों पर शक्तिशाली कबीलों की विजय से हुआ" (Historically it means that Government is the outcome of human aggression, that the beginnings of the state are to be sought in the capture and enslavement of man by man, in the conquest and subjugation of feebler tribes.)।

शक्ति सिद्धांत का विकास (Development of Force Theory) शक्ति सिद्धांत की मान्यता हमें अत्यंक प्राचीन काल से मिलती है। यूनान के सोफिस्ट (Sophist) विचारकों का मत था कि "बलवान की शक्ति ही न्याय और कानून का स्त्रोत है, असमानता प्रकृति का नियम है, दुर्बल की अपेक्षा बलवान श्रेष्ठतम होता है।" प्लेटो ने कहा है कि "न्याय शक्तिशाली के हित के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।"

वर्तमान समय में भी अनेक राजनीतिक विचारधाराओं द्वारा शक्ति सिद्धांत का समर्थन किया गया है। अराजकतावादी राज्य को शक्ति का प्रतीक मानकर ही राज्य को समाप्त करने का तर्क देते हैं। इसी प्रकार व्यक्तिवादी भी राज्य को शक्ति पर आधारित होने के कारण एक आवश्यक बुराई मानते हैं। अराजकतावादी और व्यक्तिवादी ही नहीं वरन् साम्यवादी विचारकों का भी यही मत है कि राज्य एक शक्ति मूल्क संस्था है। साम्यवाद के कट्टर समर्थक लेनिन ने कहा है कि "राज्य पूंजीपतियों के हाथ में शोषण का एक ऐसा साधन है जिससे वे जनता के बहुमत पर शासन करते हैं।" (The state is the instrument of the exploitation in the hands of capitalists who rule over the majority of the population.)। जर्मन जनरल वान बर्नहार्ड (General Van Bernhards) का मत था कि "शक्ति ही सर्वोतम सत्य है और इस बात का निर्णय कि सत्य क्या है? यह युद्ध के द्वारा होगा। युद्ध सच्चे निर्णय देता है, क्योंकि इसमें निर्णय वास्तविकता पर आधारित होते हैं।" (Might is the supreme right and the dispute as to what is right, is decided by the arbitration of war. War gives a biological just decision, since its decisions rest on the very nature of things.)। हिटलर और मुसोलिनी ने भी शक्ति की प्रशंसा की है और शक्ति के आधार पर अपने क्षेत्र का विस्तार उचित बताया है। वर्तमान समय में शक्ति सिद्धांत के समर्थकों में ओपनहीमर का नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है। ओपनहीमर के अनुसार, "राज्य एक वर्गीय संगठन है, जिसका जन्म युद्ध के द्वारा ही हुआ है।" चीन के मोओत्त्से तुंग (Mao-Tse-Tung) कहते हैं कि "शक्ति बंदूक की नली से निकलती है।" (Power comes out of the barrel of the gun.)।

शक्ति सिद्धांत की आलोचना (Criticism of Force Theory)

आधुनिक युग में शक्ति सिद्धांत को सही नहीं माना जाता। लीकॉक (Leacock), सीले (Seeley) और अन्य अनेक

विद्वानों ने इस सिद्धांत की कड़ी आलोचना निम्नलिखित आधार पर की है:–

1. **केवल शक्ति नहीं (Not Force Alone)** – विद्वानों के अनुसार राज्य केवल शक्ति से उत्पन्न नहीं हुआ है। उसमें रक्त–संबंध, धर्म, आर्थिक सहयोग और राजनीतिक चेतना आदि ने भी शक्ति से कम महत्वपूर्ण भाग नहीं लिया है। लीकॉक (Leacock) का मत है कि "शक्ति–सिद्धांत की भूल यह है कि वह राज्य के विकास शक्ति को ही एक–मात्र तत्व मान लेता है।" सीले का मत है कि "राज्य का जन्म शक्ति के द्वारा नहीं हुआ, यद्यपि उसके विकास में शक्ति ने भाग लिया है।" (The emergence of the State was not due to force, although in the process of expansion, force has undoubtedly played a part.)

2. **नैतिक संस्था (Moral Institution)** – आधुनिक समय में राज्य को नैतिक संस्था के रूप में स्वीकार किया गया है। बोदिन का कहना सही है कि "शक्ति डाकुओं के गिरोह का संगठन कर सकती है। राज्य का नहीं।" (Superior force may make a band of robbers but not of State.) गिलक्राइस्ट ने लिखा है, "शक्ति राज्य की कसौटी है, उसका सार नहीं। अगर शक्ति राज्य का सार बन जाए तो राज्य का अस्तित्व उसी समय तक रहता है जब तक शक्ति बनी रहें। राज्य का स्थायी आधार नैतिक बल है।" (Coercive power is a criterion of the State, but not its essence. If it becomes the essence of the State, it can last so long as might can last. Indi-criminate use of force has been the fore-runner of all revolutions. Moral source is the permanent foundation of the state.)

3. **जिसकी लाठी उसकी भैंस (Might is Right)** – शक्ति सिद्धान्त के आधार पर यदि 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' का सिद्धान्त लागू हो जाएगा तो केवल ताकतवर लोगों को जीवित रहने का अधिकार (Survival of the fittest) होगा, निर्दल या कमजोर लोगों को नहीं। आधुनिक युग में यह सिद्धांत लोगों को मंजूर नहीं।

4. **जनता की इच्छा (Will of the People)** – यह ठीक है कि राज्य की सुरक्षा के लिए सेना और पुलिस की जरूरत होती है लेकिन न तो शक्ति राज्य का आधार है और न ही वह राज्य को दृढ़ता दे सकती है। लोग राज्य की आज्ञा का पालन दंड के भय से कहीं अधिक अपने स्वभाव और विवेक–बुद्धि के आधार पर करते हैं। इस संबंध में टी॰एच॰ ग्रीन का यह कहना पूरी तरह सही है, कि "राज्य का आधार शक्ति नहीं, मानवीय इच्छा है।" (Will, not force is the basis of State.)

5. **मानव चेतना (Human Conciousness)** – गिलक्राइस्ट तथा टी॰एच॰ ग्रीन आदि विद्वानों का मत है कि सभी सामाजिक एवं राजनीतिक संस्थओं का जन्म मानव चेतना के कारण हुआ है न कि बल के कारण। गिलक्राइस्ट के अनुसार "राज्य सरकार और वास्तव में सभी संस्थाएं मानव चेतना का परिणाम है और वे ऐसी कृतियां हैं जो मनुष्य द्वारा नैतिक उद्देश्य को समझ लेने के कारण हुई है।" (The state Government and indeed all institutions are the result of man's conscious creations which have arisen from his appreciation of a normal end.)। इस तथ्य का समर्थन करते हुए ग्रीन ने कहा है कि "मानव चेतना स्वतंत्रता चाहती है, स्वतंत्रता के लिए अधिकार आवश्यक होते हैं, और अधिकारों के संरक्षण के लिए राज्य आवश्यक है। (Human consciousness postulates liberty, liberty involves rights, rights demand the state.)

6. **अप्रजातंत्रीय सिद्धांत (Undemocratic Theory)** – वर्तमान युग प्रजातंत्र का युग है। प्रत्येक राजनैतिक व्यवस्था का आधार लोक इच्छा होती है। लेकिन यह सिद्धांत पाशविक बल को सब कुछ मानकर चलता है तथा हिंसा व दमन को बढ़ावा देता है। यह सिद्धांत तानाशाही तथा अत्याचारी शासन का समर्थन करता है। इसलिए प्रजातंत्र विरोधी अथवा अप्रजातंत्रीय है।

7. **अंतर्राष्ट्रीयवाद के प्रतिकूल (Against Internationalism)** – शक्ति सिद्धांत के समर्थकों – जैसे हीगल, नीत्शे आदि ने केवल तानाशाही तथा राज्य की निरंकुशता का समर्थन ही नहीं किया, अपितु युद्धों की प्रशंसा का भी है। अतः यह सिद्धांत विस्तारवाद, साम्राज्यवाद, युद्ध व हिंसा का समर्थन तथा अन्तर्राष्ट्रीय शांति, कानून व व्यवस्था का शत्रु है। दो विश्व–युद्धों द्वारा मानव–जाति का कम विनाश नहीं हुआ, और यदि तीसरा विश्व–युद्ध हुआ तब मानवता के अस्तित्व के लिए खतरा पैदा हो जायेगा। विश्व–शांति बनाये रखने के महत्व को मानते हुए हम टी॰एच॰ ग्रीन के इस कथन से सहमत हैं कि "राज्य का निर्माण बल–प्रयोग अथवा शक्ति द्वारा न होकर उस बल या शक्ति के द्वारा होता है, जो लिखित अथवा अलिखित कानून के अनुसार आंतरिक और बाहरी हमलों से नागरिकों के अधिकारों की रक्षा के लिए किया जाता है।" (It is not coercive power as such, but coercive power exercised according to Law, written or unwritten for the maintenance of the existing rights of the citizens for external and internal invasions that make a State.)

निष्कर्ष (Conclusion)

शक्ति सिद्धांत की इस आलोचना के बावजूद इस बात को स्वीकार करना हेगा कि राज्य की उत्पत्ति और विकास में 'शक्ति' अवश्य सहायक तत्व रही है। सीले (Seeley) और लीकॉक (Leacock) आदि विद्वानों ने इस सच्चाई को स्वीकार किया है। इसमें संदेह नहीं कि प्रत्येक राज्य के अस्तित्व के लिए 'शक्ति' आवश्यक है। किसी भी राज्य में असामाजिक तत्वों को राज्य की शक्ति के द्वारा ही नियंत्रण में रखा जा सकता है। हम ब्लंशली के कथन से सहमत है कि "बिना शक्ति के न कोई राज्य उत्पन्न होता है और न ही स्थायी रह सकता है।" (Without Force a State can neither come into being nor continue, force is required within, as well as without.)। लेकिन फिर भी राज्य शक्ति का परिणाम न होकर, मानवीय चेतना का परिणाम है। गिलक्राइस्ट ने ठीक ही कहा है कि "राज्य, सरकार और वास्तव में सभी संस्थाएं मानवीय चेतना का परिणाम है, और वे ऐसी कृतियां हैं जो मानव के नैतिक उद्देश्य को समझने के फलस्वरूप उत्पन्न हुई है।" (The State, Government and indeed all institutions are the result of man's conscious creations which have arisen form his appreciation of a moral end.)।

1.3.5 पैतृक तथा मातृक सिद्धांत (Patriarchal and Matriarchal Theories)

पैतृक सिद्धांत (Patriarchal Theory) – यह सर्वमान्य तथ्य है कि राज्य इतिहास की उपज है। वह मानवकृत अथवा ईश्वरकृत नहीं है, वरन् धीमे–धीमे निंरतर एवं क्रमिक विकास का परिणाम है। परिवार के विस्तार के क्रम से राज्य अस्तित्व में आया है, तथा परिवार में पिता का बच्चे पर नियंत्रण करना ही राज्य की उत्पत्ति का रूप है, इसी तत्थ पर पैतृक सिद्धांत आधारित है। इस सिद्धांत के अनुसार प्राचीन समय में समाज व्यक्तियों का समूह न होकर परिवारों का समूह था और प्राचीन समाज की इकाई परिवार था। इस प्रकार के प्रारम्भिक परिवारों में पिता की प्रधानता होती थी। प्रारम्भ में परिवार था, जिसकी वृद्धि से जाति अस्तित्व में आई, जाति से समुदाय, और समुदाय से समाज का निर्माण हुआ औरर कालांतर में इसी समाज ने राज्य का रूप ले लिया। अरस्तु कथन था कि "पहले परिवार बनता है, जब कई परिवार जुड़ते हैं और इस सम्मिलन का उद्देश्य नित्य की आवश्यकताओं से अधिक होता हैं, तो ग्राम की उत्पत्ति होती है, जब कई ग्राम मिलकर एक बड़े और लगभग या पूर्णतः आत्म–निर्भर समाज में संयुक्त हो जाते हैं, तब राज्य का उदय होता है।" (The family arises first…..when several families are united, and the association aims at something more than the supply of daily needs, then comes into existence the village…….when several villages are united in a single community, perfect and large enough to be nearly or quite self sufficing, the State comes into existence.)। इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि परिवार से ग्राम, और ग्राम से

राज्य की उत्पत्ति हुई है। लीकॉक ने विकास क्रम का वर्णन करते हुए कहा है कि "पहले गृहस्थी, फिर एक पितृ प्रधान परिवार, फिॅर समान नस्ल के व्यक्तियों की जाति, और अन्त में एक राष्ट्र, सामाजिक कड़ी का निर्माण इसी आधार पर हुआ है।" (First a household, then a Patriarchal family, than a tribe of persons of some decent, and finally a nation – so runs the social erected on the basis.)।

इंग्लैंड के एक विद्वान हेनरी मेन ने अपनी पुस्तकों (Ancient Law) और (Early History of Institutions) में प्राचीन रोम, यहूददी और भारतीय परिवार प्रथा के गहरे अध्ययन के आधार पर यह बताने की कोशिश की है कि राज्य की उत्पत्ति पैतृक परिवारों से हुई है। सर हैनरी मेन ने लिखा है, कि "परिवार ऐसा प्रारम्भिक समुदाय होता है जो सबसे बड़े पुरूष की सामान्य अधीनता से जुड़ा होता है। परिवारों के योग से कुल या गोत्र बनता है, कुलों के मेल से कबीला या जाति बनती हैं, और जातियों के योग से राज्य का निर्माण होता है।" (The elementary group is the family connected by common subjection to the highest male ascendant. The aggregation of the families forms the house. The aggregation of houses makes the tribe. The aggregation of tribes constitute the commonwealth.)

सर हेनरी मेन की दोनों रचनाओं ने इस शताब्दी के शुरू में अनेक विद्वानों को प्रभावित किया था। वुडरो विल्सन ने इस सिद्धान्त का समर्थन करते हुए लिखा था कि "परिवार राजनीतिक समाज की प्रारम्भिक या आदिम इकाई थी और उसी से आगे चलकर सरकार का विकास हुआ है।" (The family was the primary unit of political society, the seeded of all larger growths of Government.)। एक अन्य विद्वान ड्यूगिट का कहना है, "पिता परिवार का प्राकृतिक मुखिया होता है। वह अपने छोटे परिवार के सदस्यों पर राज करता है। प्राचीन नगर–राज्य छोटे–छोटे परिवारों से बनी एक राजनीतिक इकाई होती थी। जिसमें सम्पूर्ण राजनीतिक शक्ति वयोवृद्ध पिता के हाथ में होती थी।" (Father is the natural chief, the Governor of the little state of which the members of the family are governed the ancient city was merely a union of families in which political power belonged to the father.)।

सर हेनरी मेन (Sir Henry Maine) ने आगे लिखा है कि "प्राचीन काल में समाज परिवारों में सबसे बड़ा पुरूष परिवार के अन्य सदस्यों की अपेक्षा ऊंचा समझा जाता था, और उसकी अपने परिवार के सदस्यों पर निंरकुश सत्ता होती थी। वह अपने परिवार के सदस्यों को आज्ञा भंग करने पर सख्त से सख्त दंड दे सकता था, जिसमें मृत्यु दंड भी शामिल था।" (The eldest male parent the eldest ascendant was absolutely supreme in his household and his dominion extended to life and death and was as unqualified despite over his children and their house as over his slaves.)।

मुख्य विशेषताएं (Main Features)

पैतृक परिवार (Patriarchal) की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैंः–

परिवारों का विस्तृत रूप (Larger Form of Patriarchal Family)

अरस्तु के मतानुसार परिवार राज्य का बड़ा आकार है। इस तथ्य का समर्थन करते हुए हेनरी मेन (Henry Maine) ने कहा है कि "प्रारम्भिक इकाई एक ऐसा परिवार है, जो सबसे बड़े पुरूष पूर्वज के सामान्य शासन से बंधा हुआ है। कई परिवारों को मिलाकर वंश या कुटुम्ब बनता है, वंशों या कुटुम्बों को मिलाकर एक कबीला या जाति बनती है, कबीलों को मिलाकर राज्य बनता है।"

स्थायी विवाह (Permanent Marriage)

इस सिद्धांत के समर्थकों के अनुसार प्रारंभ से ही स्थायी विवाह की प्रथा प्रचलित थी तथा मनुष्य परिवारों में रहते थे।

असीमित शक्तियां (Absolute Powers)

पैतृक परिवारों में कुटुम्ब का मुखिया पिता ही परिवार का प्रधान होता था। परिवार के सदस्यों पर उसका पूर्ण नियंत्रण होता था।

वंशानुगत (Hereditary)

पैतृक सिद्धांत वंशानुगत है तथा पिता के नाम पर परिवार चलते थे। पिता की मृत्यु के पश्चात् सबसे बड़े पुत्र को सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त हो जाते थे।

आलोचना (Criticism)

इस सिद्धांत की आलोचना निम्नलिखित आधारों पर की जाती है :–

1. **अनऐतिहासिक (Unhistorical)** – मैकलेनन, मार्गन तथा जैंक्स आदि विद्वानों का कहना है कि पैतृक सिद्धांत का समर्थन इतिहास नहीं करता, क्योंकि उस काल में एक स्त्री कई पुरूषों से सम्पर्क स्थापित करती थी। इस प्रकार माता का पता होना निश्चित था, परंतु पिता का पता होना अनिश्चित था। पैतृकता निश्चित न होने के कारण वंशावली माता द्वारा मानी जाती थी।

2. **विकास की प्रक्रिया जटिल (States's Evolution is Complex)** – गिलक्राइस्ट का कहना है कि राज्य के विकास की प्रक्रिया सरल न होकर बहुत अधिक जटिल है। उसके शब्दों में "पैतृक सिद्धांत राज्य की उत्पत्ति की सबसे अधिक सरल व्याख्या है किंतु इसकी सबसे बड़ी कमजोरी उसकी यह सरलता ही है।" (The Patriarchal theory is one of the simplest explanations of the origin of the state, but one of its chief weaknesses is this very simplicity.)। एक अन्य विद्वान सर जे॰जी॰ फ्रेजर का कहना है, "जों कोई व्यक्ति संस्थाओं के इतिहास की खोज करता है उसके अपने दिल में उस विषय की जटिलता को सदा ध्यान में रखना चाहिए, जिससे मुनष्य के समाज की रचना हुई है, और उसे वैज्ञानिक खोज के इस खतरे से होशियार रहना चाहिए कि विज्ञान में घटनाओं के असंख्य रूपों को अकारण की सरल बनाने की प्रवृत्ति रहती है, जिसके कारण उसमें केवल कुछ कारणों की और ध्यान देते हैं, और शेष को छोड़ देते हैं।" (He who investigates the history of institutions should constantly bear in mind extreme complexity of causes which have build up the fabric of human society, and should be on his guard against a subtle danger incidental to all sciences the tendency of simplify usually the infinite vaietyy of the phenomenon of fixing our attention on a few of them to the exclusion of the next.)।

3. **मातृ प्रधान (Matriarchal)** – मैकलीनन (MeLennon) और मॉर्गन (Morgan) आदि विद्वानों का विश्वास है कि आदिम युग में विवाह नाम संस्था नहीं थी, और एक स्त्री का संबंध अनेक पुरूषों (Polyandry) से होता था। अतः परिवारों का विकास मातृक आधार पर हुआ है, पैतृक आधार पर नहीं।

4. **बहुपतित्त्व की प्रथा (The System of Polyandry)** – जैंक्स का कहना है कि जब आदिम युग में स्थाई विवाह संबंध नहीं होते थे तब समाज में बहुपतित्त्व की प्रथा रही होगी। अतः रक्त–संबंध और वंश पिता से निर्धारित नहीं किये जा सकते थे। उस हालत में उसकी जानकारी माता से ही की जाती थी तथा वंश माता से ही चला करते थे।

5. **रक्त–संबंध राज्य की उत्पत्ति का एक मात्र तत्व नहीं (Kinship is not the only factor of the origin of the State)** – आधुनिक विद्वानों का मानना है कि राज्य की उत्पत्ति और विकास में रक्त संबंध तथा तत्व तो है परंतु वह एक मात्र तत्व नहीं है। इसलिए सर हेनरी मेन का बताया हुआ पैतृक सिद्धांत सही नहीं है।

निष्कर्ष (Conclusion)

यह ठीक है कि पैतृक सिद्धांत में अनेक दोष हैं ओर इसीलिए इसे राज्य की उत्पत्ति का सही सिद्धांत नहीं माना जाता। फिर भी पैतृक सिद्धांत इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि इसमें राज्य की उत्पत्ति में रक्त–संबंध के योगदान के महत्व को स्पष्ट किया गया है।

मातृक सिद्धांत (Matriarchal Theory)

इस सिद्धांत के अनुसार, समाज की सबसे प्राचीन इकाई प्राचीन इकाई पैतृक परिवार न होकर मातृक परिवार थी। मनुष्य का सबसे पहला संगठन टोली अथवा झुण्ड (Pack) था जो बंदर, आदि जीवों में आज भी पाया जाता है। स्त्री तथा पुरूष विवाह द्वारा किसी स्थाई बंधन से नहीं बंधे थें। प्रारंभिक समाज में एक स्त्री के कई पति होने की रीति (Polyandry) प्रचलित थी। ऐसी स्थिति में उत्पन्न होने वाली संतान को केवल माता का ही ज्ञान होता था, पिता का नहीं। संतान, सम्पत्ति और परिवार की शक्ति पर माता का अधिकार होता था और उत्तराधिकार माता से ही जाना जाता था।

मुख्य विशेषताएं (Main Features)

इस सिद्धांत की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं :–

1. **अस्थायी विवाह प्रथा (Temporary Marriage System)** – इस सिद्धांत के समर्थकों के अनुसार प्राचीन काल में विवाह प्रथा अस्थाई थी, और स्त्री–पुरूष संबंध थोड़े समय के लिए होते थे। संतान का पालन–पोषण माता के परिवार द्वारा किया जाता था, क्योंकि पिता के संबंध में जानकारी नहीं होती थी।

2. **मातृ सत्ता (Maternal Authority)** – मातृ प्रधान परिवारों की मुखिया स्त्री होती थी तथा परिवार की सम्पत्ति भी माता के नाम से ही होती थी। मुखिया स्त्री के आदेशों का पालन परिवार के सभी सदस्यों के द्वारा किया जाता था।

3. **स्त्री–परिवार का आधार (Woman the Basis of Family)** – प्राचीन समय में विवाह संबंध अस्थाई होने के कारण संतान केवल माता को जानती थी, पिता को नहीं। फलस्वरूप परिवार माता के नाम से जाने जाते थे और वंश भी माता के नाम पर चलते थे, उत्तराधिकार संबंधी नियम भी मातृ सत्तात्मक थे।

आलोचना (Criticism)

इस सिद्धांत की आलोचना निम्नलिखित है :–

1. **अनऐतिहासिक (Unhistorical)** :– पैतृक सिद्धांत की ही तरह ऐतिहासिक आधार पर यह सिद्ध करना कठिन है कि आदिम युग में मातृक परिवार रहे होंगे। इस संबंध में लीकॉक (Leacok) का कथन अधिक सही मालूम होता है कि "प्राचीनतम परिवार या समुदाय के किसी भी निश्चित स्वरूप पर बल नहीं दिया जा सकता। कहीं पर परिवार मातृ प्रधान और कहीं पर पितृ प्रधान रहे होंगे। इनमें से किसी एक का स्थान दूसरा ले सकता था।"

2. **परिवार की उत्पत्ति का सिद्धांत, राज्य का नहीं (Theory of the origin of family, not of the State)** – यह सिद्धान्त राज्य की उत्पत्ति का सिद्धांत नहीं, अपितु परिवार की उत्पत्ति का सिद्धांत है।

3. **राज्य व परिवार में भेद (Difference between State and Family)** – गार्नर (Garner) के कथनानुसार "सारा संगठन उद्देश्य और प्रयोजन के आधारों पर परिवार और राज्य दोनों एक दूसरे से भिन्न हैं। अतः यह मानना तर्क संगत नहीं है कि एक के विकास से दूसरे का जन्म हुआ होगा या दोनों का आपस में संबंध रहा होगा।" (The family and the state are totally different in essence, organization, function and purpose, and there is little reason to suppose that one should have developed out of the other or that there should have been any connection between them.)।

4. **परिवार राज्य के जन्म का एक मात्र तत्व नहीं है (Family is not the element of the origin of the State)** – राज्य की उत्पत्ति में अनेक तत्वों ने योगदान दिया है। इन तत्वों में सामाजिक प्रवृति, धर्म, शक्ति, आर्थिक हित तथा राजनीति चेतना उल्लेखनीय है। फलतः परिवार राज्य के जन्म का एक मात्र तत्व नहीं है।

1.3.6 निष्कर्ष (Conclution)

इस विवरण से स्पष्ट होता है कि पैतृक सिद्धांत की ही तरह राज्य की उत्पत्ति औरर विकास के बारे में मातृक सिद्धांत को तर्क संगत नहीं माना जा सकता। फिर भी राज्य की उत्पत्ति और विकास में रक्त – संबंध की भी उल्लेखनीय भूमिका रही है। हम मैकाइवर के शब्दों में कह सकते हैं कि "रक्त संबंध समाज की सृष्टि करता है। और समाज आगे चलकर राज्य को जन्म देता है।" (Kinship create society and society at length creates the State.)

1.3.7 मुख्य शब्दावली

1. दैवीय
2. शक्ति
3. अंतर्राष्ट्रीयवाद
4. मातृक
5. मानवीय संस्था

1.3.8 अभ्यास हेतू प्रश्न

1. राज्य के दैवी सिद्धांत की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
   (Critically examine the Divine Theory of the Origin of State.)
2. राज्य की उत्पत्ति के बारे में शक्ति का सिद्धांत कहां तक तर्कसंगत है?
   (How far is the Theory of Force justified for the Origin of State?)
3. "राज्य न ईश्वर द्वारा निर्मित है, न ही वह शारीरिक बल का परिणाम है।" इस उक्ति की व्याख्या तथा आलोचना करो।
   (The State is neither the handwork of God, nor the result of superior Physical force. Explain and critically examine this statement.)

4. यह कहना कहां तक उचित है कि 'राज्य का जन्म शक्ति के द्वारा हुआ?'
(How far is it true that the 'Origin of state lies in force'?)

5. राज्य की उत्पत्ति के पैतृक तथा मातृक सिद्धांतों की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए। (Critically examine the Patriarchal and Matriarchal Theories regarding the Origin of the State.)

6. "शक्ति नहीं, इच्छा ही राज्य की उत्पत्ति का आधार है।" ग्रीन। विवेचना करें।
(Will not force, is the basis of Origin of State. Green. Examine this statement.)

1.3.9 संदर्भ सूची

- N.P. Barry. Introduction to Modem Political Theory, London, Macmillan, 1995.
- M. Carnoy, The State and Political Theory, Princeton NJ, Princeton University Press, 1984.
- G. Catlin, A Study of the Principles of Politics, London and New York, Oxford University Press, 1930.
- N.J. Hirschman and C.D. Stefano (eds.), Revisioning the Political Feminist Reconstruction of Tradition concepts in Western Political Theory, West View Press, Harper Collins, 1996.
- D. Heater, Citizenship: The Civic Ideal in World History, Political and Education, London, Orient Longman, 1990.
- D. Held, Models of Democracy, Cambridge, Polity Press, 1987, G Mclellan, D. Held and S. Hall (eds.), The Idea of the Modem Slate, Milton Keynes, Open University Press, 1984.
- D. Miller, Social Justice, Oxford, The Clarendon Press, 1976.
- D. Miller, (ed.), Liberty, Oxford, Oxford University Press, 1991.
- D. Miller, Citizenship and National Indentities, Cambridge, Polity Press, 2000.
- S. Ramaswamy, Political Theory: Ideas and concepts, Delhi Macmillan, 2002.
- R.M. Titmuss, Essays on the Welfare State, London, George Allen and Unwin, 1956.
- F. Thakurdas. Essays on Political Theory, New Delhi, Gitanjali, 1982.
- J. Waldron(ed.), Theories of Rights, New Delhi, Oxford University Press 1984.
- S. Wasby, Political Science: The Discipline and its Dimensions, Calcutta, Scientific Book Agency, 1970.

1.4 राज्य की उत्पत्ति संबंधी सिद्धांत सामाजिक समझौता, विकासवादी तथा मार्क्सवादी सिद्धांत

1.4.1 परिचय

राज्य की अनेक दृष्टिकोणों के बारे में विस्तृत रूप से चर्चा की गई है। राज्य की उत्पति एवं प्रकृति संबंधी उदारवादी सिद्धांत को जानने के बाद हमें व्यक्तियों के अधिकारों व स्वतंत्रता पर आधारित लोगों की सहमति संबंधी मान्यता से लोकतांत्रिक प्रणाली का विकास हुआ। इसमें हम सामाजिक समझौते के प्रमुख विचारक हॉब्स, लॉक व रूसो के कार्यों का विवेचन करना तथा विभिन्न दृष्टिकोणों की व्याख्या की गई है।

1.4.2 उद्देश्य

1. राज्य की उत्पति में सामाजिक समझौते के सिद्धांत को समझना।
2. सामाजिक समझौते के महत्व व आलोचनाओं के बारे में जानना।
3. सामाजिक समझौते संबंधी विभिन्न दृष्टिकोणों का अवलोकन करना।
4. राज्य की उत्पति के बारे विचारकों के सिद्धांतों का विश्लेषण करना।

1.4.3 सामाजिक समझौते का सिद्धान्त (The Theory of Social Contract)

राज्य की उत्पति के संबंध में सामाजिक समझौता बहुत अधिक महत्वपूर्ण है। 17वीं और 18वीं शताब्दी की राजनीतिक विचारधारा में तो इस सिद्धांत का पूर्ण प्रभाव था। इस सिद्धांत के अनुसार राजय दैवी न होकर एक मानवीय संस्था है, जिसका निर्माण व्यक्तियों द्वारा पारस्परिक समझौते के आधार पर किया गया। इस सिद्धांत के समर्थक मानव इतिहास को दो भागों में बांटते हैं :–

1. प्राकृतिक अवस्था का काल (State of Nature)
2. नागरिक जीवन के प्रारम्भ के बाद का काल (Contract)

इस सिद्धांत के सभी समर्थक अत्यंत प्राचीन काल में एक ऐसी प्राकृतिक अवस्था के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं, जिसके अंतर्गत जीवन व्यवस्थित रखने के लिए राज्य या राज्य जैसे कोई अन्य संस्था नहीं थी। प्राकृतिक अवस्था के संबंध में मतभेद होते हुए भी यह सभी मानते हैं कि किन्ही कारणों से मनुष्य प्राकृतिक अवस्था के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। प्राकृतिक अवस्था के संबंध में मतभेद होते हुए भी यह सभी मानते हैं कि किन्ही कारणों से मनुष्य प्राकृतिक अवस्था का त्याग करने के लिए विवश हुए और उन्होंने समझौते द्वारा राजनीतिक समाज की स्थापना की। इस समझौते के परिणाम स्वरूप प्रत्येक व्यक्ति की प्राकृतिक स्वतंत्रता के बदले राज्य व कानून की ओर से सुरक्षा का आश्वासन प्राप्त हुआ। व्यक्तियों को प्राकृतिक अधिकार के स्थान पर सामाजिक अधिकार प्राप्त हुए। इस प्रकार लीकॉक के शब्दों में, "राज्य व्यक्ति के स्वार्थों द्वारा चलित एक ऐसे आदान–प्रदान का परिणाम था जिसमें व्यक्तियों ने उत्तरदायित्वों के बदले विशेषाधिकार प्राप्त किये।" (The State is the result of a bargain dictated by the indicidual's own interest on exchange of obligations in return for privileges.)

1.4.4 सामाजिक समझौते सिद्धांत का विकास (Development of Social Contract Theory)

महाभारत में 'शांति पूर्व' में इस बात का वर्णन मिलता है कि जब पहले राज्य न था, तो उसके स्थान पर अराजकता

थी। ऐसी स्थिति से तंग आकर मनुष्यों ने परस्पर समझौता किया और 'मनु' को अपना शासक स्वीकार किया। आचार्य कौटिल्य ने भी अपने 'अर्थशास्त्र' में इस मत को अपनाया है कि प्रजा ने राजा को चुना और राजा ने उनकी सुरक्षा का वचन दिया। यूनान के सबसे पहलले सोफिस्ट वर्ग ने इस विचार का समर्थन किया। उनका मत था कि राज्य एक कृत्रिम संस्था और एक समझौते का परिणाम है। रोमन विचारकों ने भी इस बात पर बल दिया कि 'जनता राजसत्ता का अंतिम स्त्रोत है'। 16वीं और 17वीं सदी में यह विचार बहुत अधिक लोकप्रिय हो गया और लगभग सभी विचारक इसे मानने लगे। रिचर्ड हूकर ने सर्वप्रथम समझौते की तर्क पूर्ण व्याख्या की किन्तु इस सिद्धांत का वैज्ञानिक विवेचन हॉब्स, लॉक और रूसो द्वारा किया गया, जिन्हें 'समझौतावादी विचारक' कहा जाता है।

इस सिद्धांत का अध्ययन निम्नलिखित भागों में किया जा सकता है :–

प्राकृतिक अवस्था (State of Nature)

इस सिद्धांत के मुख्य तीनों ही समर्थक हॉब्स, लॉक और रूसो इस बात पर सहमत हैं कि मानवीय इतिहास में एक समय ऐसा था जब कोई राजनीतिक व्यवस्था नहीं थी न कोई राजा था, न सरकार, न कानून, न न्यायाल्य कुछ विचारकों के अनुसार यह व्यवस्था या तो पूर्व राजनीतिक थी या पूर्व सामाजिक थी, परंतु दोनों ही स्थितियों में मनुष्य का जीवन पूर्ण रूप से स्वतंत्र था, वह केवल प्रकृति के नियमों को ही मानता था। प्राकृतिक अवस्था में मानवीय जीवन का स्वरूप क्या था? इस बारे में इस सिद्धांत के समर्थकों में काफी मतभेद हैं।

1.4.5 हॉब्स के विचार

इस सिद्धांत के मुख्य समर्थकों में एक विद्वान हॉब्स थे, जो कि इंग्लैंड के निवासी थे। उनके समय में राजतंत्र और प्रजातंत्र के समर्थकों के बीच तनावपूर्ण विवाद चल रहा था। इस विवाद के संबंध में हॉब्स का विश्वास था कि शक्तिशाली राजतंत्र के बिना देश में शांति और व्यवस्था स्थापित नहीं हो सकती। अपने इस विचार 'शक्तिशाली तथा निरंकुश राजतंत्र' का प्रतिपादन करने के लिए 1651 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'लेवायथन' में समझौता सिद्धांत का वर्णन किया। हॉब्स के अनुसार "प्राकृतिक अवस्था में मनुष्य का जीवन अंधकारमय था, लोगों की बहुत दुर्दशा थी और उनमें सदैव कलह रहती थी। मनुष्य स्वभाव से स्वार्थी होने के कारण सदैव आपस में लड़ते झगड़ते रहते थे" आगे हॉब्स कहतें हैं कि "प्राकृतिक अवस्था में सभी एक दूसरे से लड़ते थे। इस अवस्था में उचित व अनुचित का कोई स्थान नहीं था। धोखा और शक्ति ही मनुष्य के गुण समझे जाते थे और मनुष्य का सारा जीवन सदा खतरे में था।" (The state of Nature is a state of war, a war of all against all, a state in which nothing could be unjust, force and fraud were the two cardinal virtues?)। आगे चलकर हॉब्स ने कहा है कि "मनुष्य का जीवन एकाकी, दीन, अपवित्र, पाशविक, अल्प होता था।" (The life of man was solitary, poor, nasty, brutish and short.)। इससे स्पष्ट हो जाता है कि हॉब्स के अनुसार प्राकृतिक अवस्था में जान माल तथा सम्पत्ति भी सुरक्षित नहीं थी।

1.4.6 हॉब्स का समझौता

यह संभव नहीं था कि उपरोक्त अराजक अवस्था या प्राकृतिक अवस्था सदा चलती रहे, मनुष्यों ने उस अवस्था के दुखी जीवन से छुटकारा पाने के लिए आपस में समझौता अथवा इकरार करके अराजक दशा का अंत कर दिया। हॉब्स के अनुसार सब मनुष्यों ने एक दूसरे के साथ यह समझौता किया कि, "अपना शासन कर सकने का अधिकार और शक्ति में इस एक (अमुक) मनुष्य को या इन मनुष्यों की एक सभा को समर्पित करता हूं, बशर्ते कि तुम भी अपने इस अधिकार को इसी तरह (एक मनुष्य या मनुष्यों की सभा को) समर्पित कर दो।" (I authorize and give up my right of governing myself to this man or to the Assembly of men on this condition, that thou give up thy

right to him and authorize in like manner.)। इस समझौते को स्वीकार करके सब व्यक्तियों ने अपने प्राकृतिक अधिकारों को एक विशेष 'मनुष्य' अथवा 'मनुष्यों की सभा' को समर्पित कर दिया। उस मनुष्य को राज सत्ता प्राप्त हुई और समझौता करने वाले लोग उसकी प्रजा हुए। समझौते में राजसत्ता किसी दल के रूप में सम्मिलित न हुई। हॉब्स के सामाजिक समझौते की कुछ मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं :–

1. **सामाजिक एवं राजनीतक (Social and Political)** : यह समझौता एक ही साथ सामाजिक और राजनीतिक दोनों प्रकार का है। सामाजिक, इसलिए, कि इसके द्वारा मानव ने अपनी व्यक्तिगत प्रवृति त्यागकर सामाजिक बंधन स्वीकार किया, तथा राजनैतिक–इसलिए कि उसके परिणाम स्वरूप राजसत्ता की स्थापना हुई।
2. **राजसत्ता की शक्तियां–असीमित (Unlimited Powers)** : समझौते में किसी पक्ष के रूप में सम्मिलित न होने के कारण, राजसत्ता की शक्ति असीमित एवं उनके अधिकार निरंकुश हैं।
3. **अलग होने का अधिकार प्राप्त नहीं (Withdrawl allowed)** : समझौता सब व्यक्तियों ने अपनी स्वतंत्र इच्छा से किया है, लेकिन उन्हें समझौते करने के बाद उससे अलग होने का अधिकार प्राप्त नहीं है।
4. **विद्रोह करने का अधिकार नहीं (Revolt not permitted)** : समझौते के अनुसार प्रजा को राजसत्ता के विरूद्ध विद्रोह करने का अधिकार नहीं है।
5. **न्याय करने का अधिकार (Judicial Powers)** : न्याय करने का अधिकार भी राजसत्ता को यह अधिकार है कि वह सब झगड़ों को सुने और उन पर निर्णय दें, क्योंकि यदि लोगों को अपने झगड़े स्वयं अपने सामर्थ्य के अनुसार निपटाने के लिए छोड़ दिया गया, तो फिर वही युद्धावस्था आ जाएगी, जिसका अंत करने के लिए समझौते द्वारा राजसत्ता की स्थापना की गई है।
6. **सम्प्रभुता (Sovereignity)** : समझौते के परिणाम स्वरूप केवल एक 'सम्प्रभु' की स्थापना हुई है, चाहे वह कोई व्यक्ति हो, अथवा 'कोई व्यक्तियों की सभा'। समझौते के परिणामस्वरूप जिस सम्प्रभु की स्थापना हुई, उसकी सम्प्रभुता अविभाज्य थी, क्योंकि हाब्स के शब्दों "अपने में विभाजित राजसत्ता कभी चल नहीं सकती।" दूसरे शब्दों में 'प्रभुसत्ता' अविभाज्य है।

समझौते के परिणामस्वरूप एक ऐसी राजसत्ता की स्थापना होती है, जिसकी शक्ति पूर्णतः असीमित तथा जिसके अधिकार पूर्णतः निरंकुश है। जहां तक व्यक्ति का संबंध है, वह उस राजसत्ता का दास हो जाता है। हाब्स ने इस समझौते से उत्पन्न राजशक्ति की निरंकुशता का समर्थन करते हुए भी व्यक्ति की इस स्वतंत्रता का समर्थन किया। हाब्स के शब्दों में "व्यक्ति को राजसत्ता का उल्लंघन करने का अधिकार है, यदि वह उसे अपने को मारने, घायल करने, अथवा पंगु बनाने की आज्ञा दे, अथवा अपने को आघात पंहुचाने वालों का विरोध न करने की आज्ञा दे, अथवा भोजन, औषधि अथवा ऐसी वस्तुओं के प्रयोग के लिए मनाही करे, जिसके बिना वह जीवित नहीं रह सकता।" (Every man has a right to disobey, if he commands him to kill, wound or mayhem himself, or not to resist those that assault him, or to abstain from the use of food, medicine or any other thing, without which he cannot live.)।

1.4.7 आलोचना (Criticism)

हाब्स के इन विचारों की कटु आलोचना की गई। यह आलोचना प्रमुख रूप से निम्नलिखित आधारों पर की गयी हैः–

1. **मानव स्वभाव का वर्णन–एकाकी (Wrong description of man)** : हाब्स ने मानव स्वभाव का चित्रण स्वार्थी, अंहकारी और आत्माभिमानी कि रूप में किया है, लेकिन मानव स्वभाव की यह व्याख्या पूर्णतः एकाकी है, मानव स्वार्थी प्राणी होने के साथ–साथ सामाजिक प्राणी भी है और उसमें दया, सहानुभूति एवं प्रेम का भाव पाया जाता है।

2. **अतार्कि (Illogical)** : यदि यह मान भी लिया जाए कि प्राकृतिक अवस्था में व्यक्ति असामाजिक, स्वार्थी और झगड़ालू था, तो प्रश्न यह उठता है, कि उस प्रकार के असामाजिक व्यक्तियों में समझौता करने की इच्छा व सामाजिक भावना का उद्‌य कैसे हो गया? वॉहन (Vaughan) ने ठीक ही कहा है कि "जिस प्रकार एक हब्शी अपना रंग नहीं बदल सकता, उसी प्रकार एक रक्त का प्यासा व्यक्ति, जिसका वर्णन हाब्स ने अपने ग्रंथ के आरंभ में किया है, शांतिप्रिय श्रमिक नहीं बन सकता।"

3. **भय के आधार पर राज्य की स्थापना संभव नहीं (Fear is not the basis of State)** : हाब्स के द्वारा भय और स्वार्थ जैसी–भावनाओं के आधार पर राज्य की स्थापना की गयी, जो नितान्त अनुचित और असंभव है। वास्तव में राज्य या समाज भय तथा स्वार्थ पर नहीं वरन् सद्‌भावना, सहयोग और सामाजिक हित की भावना पर आधारित है।

4. **निरंकुश शासन की स्थापना (Despotic Rule)** : हाब्स के द्वारा जिस स्वेच्छाचारी एवं निरंकुश शासन की स्थापना की गई है, वह अत्यंक भयंकर है। उसने शासन की शक्ति पर कोई भी नियंत्रण नहीं लगाया है, और ऐसे निरंकुश शासन में व्यक्तियों की स्वतंत्रता, जीवन और संपत्ति कुछ भी सुरक्षित नहीं रह सकते।

5. **राज्य तथा सरकार में अंतर नहीं (No difference between State and Government)** : हाब्स के सिद्धांत का एक दोष यह भी है कि उसने राज्य और सरकार में कोई अंतर नहीं किया।

1.4.8 महत्व (Importance)

हाब्स (Hobbes) ने इस बात पर बल दिया है कि राज्य दैवी नहीं वरन् मानवीय संस्था है। इसके अतिरिक्त, हाब्स की विचारधारा ने प्रभुसत्ता की धारणा का प्रतिपादन किया है।

जॉन लॉक के विचार (Views of John Locke) : जॉन लॉक इंग्लैण्ड का ही एक अन्य दार्शनिक था जिसने अपने सिद्धांत का प्रतिपादन (1690) में प्रकाशित पुस्तक "Two Treaties on Government" में किया है। लॉक ने अपनी पुस्तक में सीमित या वैधानिक राजतंत्र का समर्थन किया। जॉन लॉक ने अपने समझौता सिद्धांत की व्याख्या निम्न प्रकार से की है :–

1. **मानव स्वभाव और प्राकृतिक अवस्था (State of Nature)** : लॉक के अनुसार मनुष्य का सामाजिक प्राणी होना स्वाभाविक था, और उसमें प्रेम, सहानुभूति, सहयोग एवं दया की भावनाएं विद्यमान थीं। मानव स्वभाव की इस सामाजिकता के कारण प्राकृतिक अवस्था संघर्ष की अवस्था नहीं हो सकती थी, वरन् यह तो प्रेम, सहयोग और सुरक्षा की अवस्था थी। लॉक के अनुसाएर यह नियम प्रचलित था कि "तुम दूसरों के प्रति वैसा ही व्यवहार करो, जैसा व्यवहार तुम दूसरों से अपने प्रति चाहते हो" (Do unto others, as you wish to be done by others) प्राकृतिक अवस्था में मनुष्यों को प्राकृतिक अधिकार प्राप्त थे, और प्रत्येक व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के अधिकारों का आदर करता था। इसमें मुख्य अधिकार जीवन, स्वतंत्रता और सम्पत्ति के थे।

1.4.9 समझौते के कारण (Circumstances Leading to Contract)

इस आदर्श प्राकृतिक अवस्था में कुछ समय बाद व्यक्तियों को कुछ ऐसी असुविधाऐं हुई, और इन असुविधाओं को दूर करने के लिए व्यक्तियों ने प्राकृतिक अवस्था का त्याग करना उचित समझा। लॉक के अनुसार ये असुविधाएं निम्नलिखित थी :–

1. प्राकृतिक नियमों की कोई स्पष्ट व्यवस्था नहीं थी।
2. इन नियमों की व्याख्या करने के लिए कोई योग्य सभा नहीं थी।
3. इन नियमों को मनवाने के लिए कोई शाक्ति नहीं थी।

समझौता (Contract)

हाब्स के सिद्धांत के अंतर्गत राज्य का निर्माण करने के लिए केवल एक ही समझौता किया गया था। परंतु लॉक के वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि दो समझौतें किए गए जिनका वर्णन इस प्रकार है :–

1. पहले समझौते द्वारा प्राकृतिक अवस्था का अंत करके समाज की स्थापना की गई। इस समझौते का उद्देश्य व्यक्तियों के जीवन, स्वतंत्रता और सम्पत्ति की रक्षा है।
2. पहले समझौते के बाद शासक (Ruler) और शासित (Ruled) के मध्य एक दूसरा समझौता सम्पन्न हुआ, जिसमें शासित वर्ग के द्वारा शासक को कानून बनाने, उनकी व्याख्या करने और उन्हें लागू करने का अधिकार दिया गया।

लॉक इस विचार का समर्थन करता है कि यदि सरकार अपने उद्देश्य में असफल हो जाती है तो समाज को इस प्रकार की सरकार के स्थान पर दूसरी सरकार स्थापित करने का पूर्ण अधिकार है।

आलोचना (Criticism)

लॉक (Locke) के सामाजिक समझौता सिद्धांत की आलोचना निम्नलिखित आधारों पर की जाती है –

1. **अवास्तविक (Unrealistic)** : लॉक का प्राकृतिक अवस्था का चित्रण हाब्स से भी अधिक वास्तविकता से दूर है। प्रारम्भिक जनसमुदाय कभी भी इतना सामाजिक, शांत और नैतिक नहीं रहा, जितना की लॉक के द्वारा समझाया गया है। यदि प्राकृतिक अवस्था ऐसी ही आदर्श थी, तो फिर राज्य के निर्माण की आवश्यकता ही क्या थी?
2. **निंरतर क्रांति की आशंका (Possibility of frequent revolts)** : लॉक ने कहा कि यदि सरकार जनहित के विरूद्ध कार्य करे, तो जनता के द्वारा विद्रोह करते हुए सरकार को हटाया जा सकता है। ऐसी स्थिति में लॉक का दर्शन जनता के लिए 'विद्रोह का लाइसेन्स' बन (Licence for revolt) जाता है।
3. **कानूनी राजसत्ता को महत्त्व नहीं (Legal sovereignity ignored)** : लॉक की एक गम्भीर कमी यह है कि उसने कानूनी राजसत्ता को कोई महत्त्व नहीं दिया। इस संबंध में गिलक्राइस्ट ने ठीक ही लिखा है, "हाब्स ने राजनीतिक सत्ता को स्वीकार करते हुए कानूनी राजसत्ता का प्रतिपादन किया है। लॉक ने राजनीतिक राजसत्ता की शक्ति को स्वीकार किया है, पर कानूनी राजसत्ता को मान्यता नहीं दी है।"

1.4.10 रूसो का सामाजिक समझौता

रूसों ने अपने सामाजिक समझौता का प्रतिपादन (1762) में प्रकाशित पुस्तक "The social contract" में किया है। हॉब्स और लॉक के समान रूसों के द्वारा इस सिद्धांत का प्रतिपादन किसी विशेष उद्देश्य से नहीं किया गया रूसो के द्वारा अपने सिद्धांत की व्याख्या निम्न प्रकार की गई :–

1. **मानव स्वभाव और प्राकृतिक अवस्था (State of Nature)** : रूसों अपनी पुस्तक 'सामाजिक समझौता में लिखता है कि "मनुष्य स्वतंत्र पैदा होता है, किंतु वह सर्वत्र जंजीरों में जकड़ा हुआ है।" (Man is born free, but everywhere he is in chains.)। प्राकृतिक अवस्था में व्यक्ति एक भोले और अज्ञानी बालक की भांति सादगी और परम सुख का जीवन व्यतीत करता था। इस प्रकार प्राकृतिक अवस्था पूर्ण स्वतंत्रता एवं समानता और पवित्र तथा कपट रहित जीवन की अवस्था थी, परंतु इस प्राकृतिक अवस्था में बुद्धि का अभाव था।

2. **समझौते के कारण (Circumstances leading to contract)** : रूसों, लॉक की तरह मानता है कि प्राकृतिक अवस्था आदर्श अवस्था थी, लेकिन कुछ समय बाद ऐसे कारण उत्पन्न हुए, जिन्होंने इस अवस्था को दूषित कर दिया। कृषि के आविष्कार के कारण, भूमि पर स्थायी आधिकार, और इसके परिणाम–स्वरूप सम्पति तथा 'तेरे–मेरे' की भावना का विकास हुआ, तो प्राकृतिक शांतिमय जीवन नष्ट हो गया, और समाज की लगभग वही दशा हुई जो हाब्स की प्राकृतिक अवस्था में थी। सम्पत्ति जो समाज की स्थापना के लिए उत्तरदायी ठहराते हुए रूसों लिखता है कि "वह पहला व्यक्ति समाज का वास्तविक जन्म दाता था, जिसने एक बड़े से भू–भाग को घेर कर कहा कि 'यह मेरी भूमि है', और जिसे अपने इस कथन के प्रति विश्वास करने वाले सरल व्यक्ति मिल गये। इस प्रकार प्राकृतिक अवस्था का वातावरण उपस्थित हो गया। युद्ध, संघर्ष के इस वातावरण का अंत करने के लिए व्यक्तियों ने पारस्परिक समझौते द्वारा समाज की स्थापना का निश्चय किया।

3. **समझौता (Contract)** : उपरलिखित असहनीय स्थिति से छुटकारा प्राप्त करने के लिए सभी व्यक्ति एक स्थान पर एकत्रित हुए, और उनके द्वारा अपने सम्पूर्ण अधिकारों का समर्पण किया गया। किंतु अधिकारों का यह समर्पण किसी व्यक्ति विशेष के लिए नहीं, वरन् सम्पूर्ण समाज को रूसों के शब्दों में, समझौते के अंतर्गत, 'प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तित्व और अपनी पूर्ण शक्ति को सामान्य प्रयोग के लिए सामान्य इच्छा के सर्वोच्च निर्देशक के अधीन समर्पित कर देता है तथा एक समूह के रूप में अपने व्यक्तित्व तथा अपनी पूर्ण शक्ति को प्राप्त कर लेता है।" (Each of us puts his person and all his power to common use under the supreme direction of the 'General Will'; and as a body we receive each member as an indivisible part of the whole?)

1.4.11 विशेषताएं (Characteristics)

रूसो के सामाजिक समझौता के सिद्धांत की विशेषताएं निम्नलिखित है :–

1. **सम्पूर्ण अधिकार समाज को समर्पित (Rights transferred to whole society)** : रूसो ने कहा है कि "चूंकि प्रत्येक व्यक्ति अपना पूर्ण समर्पण कर देता है, सबके लिए परिस्थितियां समान हैं, अतः कोई भी व्यक्ति दूसरों के लिए कष्टप्रद नहीं बनना चाहता" (Because each individual giving himself wholly, the circumstances are equal for all… because the circumstances being equal for all, no one has any interest in rendering them burdensome for others?)

2. **एकता (Unity)** : रूसों कहता है कि "प्रत्येक व्यक्ति सबके हाथों में अपने आप को समर्पित करते हुए, किसी के भी हाथों में समर्पित नहीं करता।" (Each one is giving himself upto all, gives himself upto no one.)। अतः समाज की सामान्य इच्छा सभी व्यक्तियों के लिए सर्वोच्च हो जाती है और प्रत्येक व्यक्ति उसके अधीन हो जाता है।

3. **महत्वपूर्ण परिवर्तन (Important Changes)** : रूसों के शब्दों में "जो कुछ समझौते से मनुष्य खोता है, वह प्राकृतिक स्वतंत्रता, और किसी भी वस्तु को पाने का असीमित अधिकार, जो कुछ वह पाता है, वह सामाजिक स्वतंत्रता और अपनी सभी वस्तुओं पर स्वामित्य" (What man loses by the Social Contract is his natural Liberty and an unlimited right to whatever he can get, and hold on to. What he gains is civil liberty and the ownership of all that he possesses.)। समझौते के परिणाम–स्वरूप उत्पन्न समाज से मनुष्य को वह नैतिक स्वतंत्रता भी मिल जाती है, जो व्यक्ति को स्वयं उसका वास्तविक स्वामी बना देती है।

4. **'सामान्य इच्छा' (General Will)** : 'व्यक्तिगत इच्छा' के स्थान पर सामान्य इच्छा आ जाती है। यह सामान्य इच्छा सदैव न्याययुक्त होती है और जनहित इसका लक्ष्य होता है। रूसों ने कहा है कि "सामान्य इच्छा और सब की इच्छा में बहुधा अंतर होता है। प्रथम, सर्वहित पर लक्ष्य करती है, द्वितीय, व्यक्तिगत हितों पर। यदि व्यक्तिगत हितों को निकाल ले, (जो एक दूसरे से टकराते हैं) तो मतभेदों का योग शेष रहता है। वह सामान्य इच्छा होती है।" (There is often a considerable difference between the General Will and the Will fo all the former, aims at the general interest, the latter aims at private interest and is only a sum of particular Wills. But is we take away from these 'Wills' the various particular interest (which conflict with each other) what: remains as the sum of the differences is the 'General Will'.)

इस प्रकार हम देखते हैं कि रूसों के सामाजिक समझौते के अनुसार एक ऐसे समाज की स्थापना होती है जिसे वह राज्य, प्रभु, शक्ति, जनता, नागरिक, तथा प्रजा सब कुछ कहता है। रूसों की राजसत्ता वस्तुतः समाज कि सत्ता है, और किसी व्यक्ति विशेष, अथवा व्यक्ति समूह विशेष में निहित न होकर एक ऐसे सम्पूर्ण समाज में ही निहित है, जिसका आधार समाज की 'सामान्य इच्छा' है। दूसरे शब्दों में, उसके समझौते द्वारा उस लोकतंत्र अथवा जनतंत्र की स्थापना होती है, जिसमें सम्प्रभुता सम्पूर्ण जनता में निहित होती है और जिसमें यदि सरकार सामान्य इच्दा के विरूद्ध शासन करती है, तो जनता को अधिकार है कि वह उसे अलग कर दे।

1.4.12 आलोचना (Criticism)

रूसो के सामाजिक समझौते के सिद्धांत की आलोचना निम्नलिखित आधार पर की जा सकती है :–

1. **अस्पष्ट एवं जटिल (Unclear and Complex)** : रूसो का सिद्धांत नितांत अस्पष्ट, जटिल एवं साधारण व्यक्ति की समझ से परे है। रूसों ने व्यक्ति को प्रजा और नागरिक दोनों का रूप प्रदान किया है। इसी प्रकार रूसो की विचार धारा के अनुसार जब किसी व्यक्ति को दण्डित किया जाता है, तो उसे यह दण्ड उसकी अपनी ही इच्छा से मिलता है। ये बातें साधारण व्यक्ति की समझ से परे हैं।

2. **राजसत्ता निरंकुश व स्वेच्छाचारी (Autocratic and Dictatorial)** : रूसो के समझौते में व्यक्ति अपनी सम्पूर्ण स्वतंत्रता और अधिकार समाज को सौंप देता है। इस प्रकार व्यक्ति की स्वतंत्रता और अधिकार उसके अपने रह ही नहीं जाते, तथा 'सामान्य इच्छा' सर्व शक्तिशाली हो जाती है। इस प्रकार निरंकुश व स्वेच्छाचारी राजसत्ता को जन्म मिलता है।

3. **निराधार और काल्पनिक (Baseless and Imaginative)** : रूसो द्वारा प्रकृति की अवस्था (State of Nature) निराधार और काल्पनिक है। ऐतिहासिक तथ्यों द्वारा यह सिद्ध नहीं होता कि प्राकृतिक अवस्था में मनुष्य इतना शांतिपूर्ण, सुखी आदर्श जीवन व्यतीत करते थे।

4. **विरोधाभास (Contradictory)** : रूसो के अनुसार यह समझौता व्यक्ति और समाज में होता है, परंतु दूसरी और वह कहता है, कि समाज समझौते का परिणाम है, यह विरोधाभास है।

1.4.13 महत्त्व (Importance)

उक्त आलोचनाओं के होते हुए भी रूसो ने अपने विचारों के रूप में राजनीति दर्शन को अमूल्य भेंट प्रदान की है। 'सामान्य इच्छा', 'लोकतंत्र' तथा 'जनता की अनुमति' पर आधारित शासन आदि महत्वपूर्ण विचारों की उसने प्रतिपादित किया। निरंकुशवाद के विरूद्ध उसने 'स्वतंत्रता', 'समानता' तथा 'भ्रातृत्व' पर जोर दिया। फ्रांस और अमेरिका के संविधानों पर उसकी इन शिक्षाओं का गहरा प्रभाव पड़ा। डनिंग (Dunning) के शब्दों में "रूसो की मृत्यु के पश्चात् हलचल के युग की दार्शनिक व्यवस्थाओं तथा शासन संगठनों, दोनों में, सभी और उसकी आत्मा तथा विश्वास दृष्टिगोचर होते हैं। चाहे उनका रूप कितना ही अदृश्य तथा परिवर्तित हो।" जे॰एम॰ कोहन (J.M. Cohen) के मतानुसार "दो शताब्दियों तथा योरूपीय विचारधारा पर रूसो का जितना प्रभाव पड़ा है, उतना अन्य किसी व्यक्ति का नहीं।" (No one had as much influence, as he (Rousseau) on the two centuries.)।

1.4.14 सामाजिक समझौता सिद्धांत की आलोचना (Criticism of Social Contract Theory)

17वीं और 18वीं सदी में समझौता सिद्धांत अत्यंत लोकप्रिय रहा। हूकर, मिल्टन, ग्रोशयस, वुल्फ, काण्ट, ब्लैकस्टोन, स्पिनोजा आदि विचारकों ने इस सिद्धांत का समर्थन किया। परंतु 18वीं सदी के अंत और 19वीं सदी के राजनीतिक विचारकों ने इस सिद्धांत की कड़ी आलोचना की। अंग्रेज दार्शनिक हूम ने घोषित किया कि, "शासक और शासितों के संबंध के आधार के रूप में समझौता असंगत है, तथा इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता है।" सर हेनरी मेन ने कहा है कि, "समाज तथा सरकार की उत्पत्ति के इस वर्णन से बढ़कर व्यर्थ की वस्तु और क्या हो सकती है?" ब्लंटशली ने इस सिद्धांत को 'अत्यधिक भयंकर', ग्रीन ने 'कपोल कल्पना' और वूल्ज ने 'सरासर झूठा' बताया। बैंथम, सर फ्रेडरिक पोलक, वॉहन, एडमण्ड बर्क आदि विद्वानों के द्वारा भी इस सिद्धांत की कटुआलोचना की गई है। वॉहन के अनुसार "सामाजिक समझौता सिद्धांत न तो इतिहास को समझने का ही उचित साधन है, और ना ही किसी ठोस राजनीतिक दर्शन का उदाहरण है।" (The Contract theory gives neither a satisfactory clue to history, nor a sound political philosophy.) इस सिद्धांत की आलोचना ऐतिहासिक, दार्शनिक, तार्किक और वैज्ञानिक आधारों पर की जाती है :–

1.4.15 ऐतिहासिक आधार पर आलोचना (Criticism on Historical Basis)

1. **समझौता अनऐतिहासिक (Unhistorical)** : ऐतिहासिक दृष्टि से सामाजिक समझौता सिद्धांत एक मन गडन्त सिद्धांत है, क्योंकि इतिहास में इस बात का कहीं भी उदाहरण नहीं मिलता कि आदिम मनुष्यों ने पारस्परिक समझौते के आधार पर राज्य की स्थापना की हों। समझौतावादी सिद्धांत के समर्थक अपने पक्ष में 11 नवम्बर 1620 के 'मेफ्लावर पैक्ट' (May flower Pact) का उदाहरण देते हैं। जिस में 'मेफ्लावर' नामक जहाज पर बैठे हुए इग्लैंड से अमेरिका जाने वाले अंग्रेजों ने समझौता किया था कि "हम लोग शांति और सुख का जीवन व्यतीत करने के उद्देश्य से एक राजनीतिक समाज की रचना करेंगे।" किन्तु इस उदाहरण से समझौता सिद्धांत की पुष्टि नहीं होती क्योंकि समझौता सिद्धांत में वर्णित प्राकृतिक अवस्था के लोगों और 'मेफ्लावर पैक्ट' से

संबंधित लोगों की राजनीतिक चेतना में बहुत अधिक अंतर हैं। गार्नर ठीक लिखते हैं कि "इतिहास में कोई ऐसा प्रामाणिक उदाहरण नहीं मिलता, जिसके अनुसार ऐसे व्यक्तियों द्वारा, जिन्हें पहले से राज्य का पता नहीं था, आपसी समझौते से राज्य की स्थापना की हो।" गिलक्राइस्ट भी इसी दृष्टिकोण को मानते हैं।

2. **प्राकृतिक अवस्था की धारणा–गलत (Wrong assumption of State of Nature)** : सामाजिक समझौता सिद्धांत मानवीय इतिहास को प्राकृतिक अवस्था ओर सामाजिक अवस्था इस प्रकार के दो कालों में बांटता है। इतिहास में कहीं भी हमें ऐसी अवस्था का सबूत नहीं मिलता।

3. **युद्धों तथा विजयों (Wars and Invasions)** : हूम, वोल्टेयर, लीकॉक आदि विद्वानों के अनुसार साम्राज्यों का निर्माण युद्धों एवं विजयों द्वारा हुआ। जब एक कमजोर कबीले पर अपने स्वार्थों की पूर्ति के कारण शक्तिशाली कबीले ने नियंत्रण जमाया, तो राजसत्ता का जन्म हुआ। लीकॉक के मतानुसार "कबीले के राज्य तथा राज्य से साम्राज्य का विकास धीरे–धीरे इसी कारण हुआ।" (The process of growth from tribe to kingdom and from kingdom to empire is but continuation of the same process.)।

4. **मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है (Man is a Social Animal)** : अरस्तु के मतानुसार "मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है," वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए प्रारम्भ से ही समाज में रहता रहा है ऐसा कोई समय नहीं था, जब मनुष्य बिना समाज के रहता तथा एंकाकी जीवन व्यतीत करता हो।

1.4.16 दार्शनिक आधार पर आलोचना (Criticism on Philosophical basis)

जहां तक दार्शनिक दृष्टिकोण का संबंध है, समझौते का सिद्धांत ठीक नहीं कहा जा सकता। दार्शनिकों के मतानुसार इस सिद्धांत द्वारा व्यक्ति स्वेच्छा से राज्य को अपनी स्वतंत्रता सौंप देता है और उसके आदेशों का पालन करने का इकरार करता है, तथा उसके बदले में राज्य उसकी रक्षा करता है, तथा उसकी स्वतंत्रता बनाए रखता है। कान्ट ने समझौते के सिद्धांत का समर्थन किया और कहा है कि "समझौते को ऐतिहासिक तथ्य नहीं माना जाना चाहिए, क्योंकि उस रूप में यह असंभव है। परंतु यह एक युक्ति युक्त विचार है, जिसका क्रियात्मक उपयोग यह है कि व्यवस्थापिका अपने कानूनों की व्यवस्था इस प्रकार करें, मानों वे एक सामाजिक समझौते का परिणाम हों।" (The Contract is not to be assumed as a historical fact, or as such, it is not possible, but it is a rational idea which has its practical utility in that; the legislator may so order his laws, as if they were the outcome of a social contract.)। दार्शनिक दृष्टिकोण से इस सिद्धांत की निम्नलिखित आलोचना की गई है :–

1. **राज्य की सदस्यता ऐच्छिक–गलत (Membership of state is voluntary-wrong)** : इस सिद्धांत के अनुसार समझौता स्वेच्छा से किया जाता है, जिसका अर्थ यह हुआ कि व्यक्ति को समझौते में सम्मिलित होकर राज्य में सम्मिलित होने अथवा उससे अलग रहने का पूर्ण अधिकार है। जबकि राज्य की सदस्यता तथा उसके आदेशों का मानना व्यक्ति के लिए अनिवार्य है। बर्क के शब्दों में, "राज्य को मिर्च मसाले, कॉफी, कपड़ा तथा तम्बाकू आदि के व्यापार के लिए की गई सांझेदारियों के समान नहीं समझना चाहिए, जो सांझेदार लोगों की इच्छानुसार समाप्त की जा सकती है।" (The state ought not to be considered as nothing than a partnership agreement in a trade of pester or coffee, calico or tobacco and to be dissolved by the fancy of the parties.)

2. **युक्तिसंगत नहीं (Illogical or Irratinal)** : समझौते के सिद्धांत का यह प्रतिपादन कि व्यक्ति की राज्य–भक्ति, तथा राज्य का व्यक्ति की रक्षा का उत्तरदायित्व, उसके द्वारा प्रतिपादित समझौते का परिणाम है, युक्तिसंगत

प्रतीत नहीं होता। परिवार के व्यक्ति एक दूसरे से संबंधित होते हैं, संतान माता–पिता की आज्ञा का पालन करती है, अथवा माता–पिता संतान की रक्षा करते हैं, किन्तु इसका कारण यह नहीं होता कि उनका इस संबंध में कोई समझौता होता है, अपितु यह सब कुछ स्वाभाविक होता है।

3. **राज्य मनुष्य की कृति (State a man - made)** : इस सिद्धांत के अनुसार राज्य मनुष्य की कृति है। इसका तात्पर्य यह है कि राज्य कृत्रिम संस्था है, लेकिन यह वास्तविकता के प्रतिकूल है। राज्य मनुष्यों द्वारा निर्मित कोई कृत्रिम संस्था नहीं है, अपितु राज्य मनुष्यों की प्रकृति का परिणाम है।

4. **प्राकृतिक अधिकार (Natural Rights)** : सिद्धांत के अनुसार प्राकृतिक अवस्था की कल्पना की कई है, जिसमें मनुष्य को प्राकृतिक अधिकार प्राप्त होने की बात कही गई है। किन्तुं यह असंगत प्रतीत होता है, क्योंकि व्यक्ति के अधिकारों अथवा उसकी स्वतंत्रता की व्यवस्था किसी सुव्यवस्थित समाज में ही संभव हो सकती है, प्राकृतिक अवस्था में नहीं।

1.4.17 कानून संबंधी दृष्टिकोण (Criticism on Legal Basis)

बुरा कानून (Bad law)

कोई भी समझौता, जिन निश्चित लोगों के मध्य होता है, उन्हीं पर लागू होता है। अतः किसी अज्ञात समय अज्ञात व्यक्तियों के बीच हुआ कोई समझौता, उनके बाद के लोगों पर लागू हो, और यहां तक कि अब के लोगों पर भी लागू हो, यह कानूनी दृष्टि से गलत है। बैन्थम के अनुसार "मेरे लिए आज्ञापालन जरूरी है, इसलिए नहीं, कि मेरे पितामाह ने तृतीय जार्ज के पितामाह से कोई समझौता किया था, वरन् इसलिए कि विद्रोह से लाभ की अपेक्षा हानि अधिक होती है।" इस प्रकार का तर्क अपनाते हुए आशीर्वादम् ने कहा है कि "यदि पूर्वजों ने खट्टे अंगूर खाये, तो उनके बच्चों के दांत क्यों उतरे।"

प्राकृतिक अवस्था में समझौता संभव नहीं (Contract not possible in state of Nature)

यदि तर्क के लिए यह मान भी लिया जाये की आदिम मनुष्य अपनी सामाजिक चेतना में इतना आगे बढ़ चुका था कि वह समझौता कर सके, तो प्राकृतिक अवस्था में किये गए किसी भी समझौते का 'कानूनी दृष्टि' से कोई महत्व नहीं है। क्योंकि किसी समझौते को वैध रूप प्राप्त होने के लिए यह आवश्यक है कि उसके पीछे राज्य की स्वीकृति का बल हो। लेकिन प्राकृतिक अवस्था में राज्य का अस्तित्व न होने के कारण सामाजिक समझौते के पीछे इस प्रकार की कोई शक्ति नहीं थी। ग्रीन के शब्दों में, "समझौता सिद्धांत में चित्रित प्राकृतिक स्थिति के अंतर्गत कानूनी दृष्टि से कोई समझौता कानून नहीं है, अतः उससे प्राप्त सब अधिकार भी झूठे हो जाते हैं।" (The real flow in the theory of contract is not that it is unhistorical but that it implies the possibility of rights and obligations independent of society.)

महत्त्व (Importance)

इस सिद्धांत का सबसे बड़ा मूल्य यह है कि :–

1. **कानून का शासन (Rule of Law)** : यह सहमति एवं असहमति को राज्य का आधार मानता है, शक्ति अथवा शासक की व्यक्तिगत इच्छा को नहीं।

2. **आधुनिक प्रजातंत्र (Modern Democracy)** : इस सिद्धांत ने आधुनिक प्रजातंत्र को जन्म दिया।

3. **मानवीय संस्था (Man-Made Institution)** : राज्य दैवी नहीं वरन् मानवीय संस्था है।

4. **प्रभुसत्ता (Sovereignty)** : हाब्स के विचारों के आधार पर ऑस्टिन के कानून प्रभुत्व के सिद्धांत (Theory of legal Sovereignty) का प्रतिपादन हुआ, तो लॉक के विचारों से राजनैतिक प्रभुसत्ता (Political Sovereignty) संबंधी प्रतिपादन को प्रेरणा मिली तथा रूसों की 'सामान्य इच्छा' द्वारा लोक प्रभुसत्ता (Popular Sovereignty) संबंधी विचारों को अपूर्व बल मिला।

1.4.18 विकासवादी या ऐतिहासिक सिद्धांत (Evolutionary or Historical Theory)

गार्नर ने सत्य ही कहा है कि "राज्य न तो ईश्वर की रचना है, न वह उच्चकोटि के शारीरिक बल का परिणाम है, न किसी प्रस्ताव या समझौते की कृति है और न परिवार का ही विस्तृत रूप है। राज्य एक कृत्रिम संस्था नहीं है, वरन् एक प्राकृतिक संस्था है जिसका ऐतिहासिक आधार पर विकास हुआ है।" (The State is neither the handwork or God, nor the result of superior physical force, nor the creation of resolution or convention, or a mere expansion of the family. The State is not merely an artificial mechanical creation but an institution of natural growth Historical evolution.)

राज्य विकास का परिणाम है, और राज्य की उत्पत्ति की सही व्याख्या ऐतिहासिक या विकासवादी सिद्धांत द्वारा की गयी है। इस सिद्धांत के अनुसार राज्य का विकास एक लम्बे समय से चला आ रहा है और आदिकालीन समाज से क्रमिक विकास करते–करते इसने वर्तमान राष्ट्रीय राज्य के स्वरूप को प्राप्त किया है। बर्गेस ने उचित कहा कि "यह पूर्णतः अपूर्ण, प्रारंभ से असभ्य, किंतु उन्नति की और अग्रसर अवस्थाओं से होकर मानव जाति के पूर्ण तथा सार्वभौम संगठन की और मानव–समाज का क्रमिक तथा निरंतर विकास है।" (The proposition that the State is a product of history, means that it is a gradual and continous development of human society, out of a grossly imperfect beginning through crude but improving forms of manifestation towards perfect and universal organization of mankind.)। जिस प्रकार भाषा प्राणियों की अर्थहीन बड़बड़ाहट से निकली है, ठीक उसी प्रकार राज्य की उत्पत्ति इतिहास से परे असभ्य समाज से हुई है। यह बताना कि कब और किस प्रकार राज्य अस्तित्व में आया, अत्याधिक कठिन है, इस संबंध में प्रसिद्ध समाजशास्त्री समनर तथा कैलर (Sumner and Keller) ने अपनी पुस्तक 'The Science of Society' में कहा है कि "यह कहना कि राज्य किस समय सबसे पहले दिखायी दिया, उसी प्रकार असंभव है जिस प्रकार यह कहना कि कब नैतिक नियम कानून बने या बच्चा कब युवक हुआ था, युवक कब एक प्रौढ़ बना।" (It is impossible to say at what point the State first appears, as it is difficult to determine when morals become laws, or at what hour the, child becomes youth or the youth a man.)

भाषा और राजनैतिक चेतना के समान ही राज्य का विकास भी धीरे–धीरे हुआ है। इस विकास क्रम के अंतर्गत समय–समय पर राज्य के विकास को विभिन्न तत्वों द्वारा प्रभावित किया गया। फिर भी उन प्रमुख प्रभावों को जिन्होंने राज्य के विकास में सहायता दी, कहना कठिन है। राज्य के विकास में सहायक कुछ तत्व प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं :–

1. **सामाजिक प्रवृत्ति (Social Instinct)** : राज्य विकास में संभवत : सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व मनुष्यों की सामाजिक प्रवृति है। अरस्तु ने मानवीय प्रकृति का चित्रण करते हुए कहा है कि, "यदि कोई मनुष्य ऐसा है जो समाज में न रह सकता हो अथवा जिसे समाज की आवश्यकता ही न हो, क्योंकि वह अपने आप में पूर्ण है तो उसे मानव समाज का सदस्य मत समझो, वह जंगली जानवर या देवता ही हो सकता है।" (Man is a social

animal, and he who does not live in a society, is either a beast or a God.)। सामाजिक प्रकृति वाले ये मनुष्य जब साथ–साथ रहे तो सामाजिक और राजनीतिक जीवन की अनेक कठिनाइयां सामने आयी और इन समस्याओं के सहज स्वाभाविक हल के रूप में स्वतः ही राज्य का उदय हो गया। अरस्तु ने कहा कि "राज्य की उत्पत्ति मानवीय जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हुई और यह जीवन को सुखी बनाने के लिए मौजूद हैं।" (State came into existence for the sake of life buut now it continues to exist for the sake of good life.)

2. **रक्त–संबंध (Kinship)** : यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि सामाजिक संगठन का प्राचीनतम रूप रक्त–संबंध पर आधारित था और रक्त संबंध एकता या प्रथम और दृढ़तम बंधन रहा है। अंग्रेजी कहावत 'खून पानी से गाढ़ा होता है' (Blood is thicher than water) इसी तथ्य पर आधारित है। सर हेनरी मेन ने लिखा है कि "समाज के प्राचीनतम् इतिहास की आधुनिकतम खोजें इस निष्कर्ष की और संकेत करती हैं कि समूहों को एकता के सूत्र में बांधने वाला प्रारम्भिक बंधन–रक्त संबंध ही था।" (The most recent researches into the primitive history of society point to the conclusion that the earliest tie which knitted man together in communities was kinship.)। आगे चलकर जब जनसंख्या की वृद्धि के कारण कुटुम्ब का आकार बढ़ा तथा जाति और कुल बने तब समाज का जन्म हुआ। इस संबधं में मैकाइवर का कथन है कि "रक्त–संबंध समाज को जन्म देता है, और कालान्तर में समाज राज्य को।" (Kinship creates society and society at length creates the state.) प्राचीन काल में सम्भवता रक्त संबंध माता से जाना जाता था और बहुपति प्रथा व अस्थायी वैवाहिक संबंध प्रचलित थे। किंतु आगे चलकर कृषि के आविष्कार के कारण व्यक्तियों ने एक विशेष स्थान पर स्थाई रूप से रहना प्रारंभ किया। इस प्रकार पहलले कुटुम्ब, फिर समाज तथा बाद में राज्य अस्तित्व में आया।

3. **धर्म (Religion)** : धर्म सदैव ही महत्वपूर्ण तत्व रहा है, धर्म ने राजनैतिक चेतना के जागरण में योगदान दिया है, अतः राज्य की उत्पत्ति में भी धर्म सहायक रहा है। समाज की एकता बनाए रखने में धर्म का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान रहा है। गैटिल ने तो यहां तक कहा है कि "रक्त–संबंध और धर्म एक ही वस्तु के दो रूप थे और समूह की एकता और उसके कर्त्तव्यों को धार्मिक मान्यता प्राप्त थी।" (Kinship and religion were, therefore two aspects of the same thing, and the unity and obligation of the group were given religious sanction.) जंगली अवस्था में जब बुद्धि का विकास नहीं हुआ था, उस समय मनुष्य प्राकृतिक शक्तियों को प्रसन्न करने की चेष्ठा में पशु–बलि यहां तक कि नर–बलि भी देता था। उसके लिए प्रकृति की प्रत्येक शक्ति देवता हो गई। मनुष्य जीवन पूर्णतः धर्म से प्रभावित बन गया। धर्म ने कुटुम्बों को एकता के सूत्र में बांधा। गिलक्राइस्ट के शब्दों में "कुटुम्ब का संघ उतना ही धार्मिक था, जितना वह स्वाभाविक था।" (The family was as much a religious as a natural association.)। धीरे–धीरे समय व्यतीत हो जाने पर धर्म की शक्ति तांत्रिकों तथा जादूगरों के हाथों में चली गई। लोग यह विश्वास करने लगे कि जादूगर अपने जादू के कारण उनके पास असीम शक्ति रखते हैं और प्रकृति को वश में कर सकते हैं। ये जादूगर ही अपने गोत्र के राजा बनने लगे और सम्पूर्ण शक्ति इनके हाथों में आ गई। गिलक्राइट ने तो यहां तक कहा कि "जादूगर से राजा बनने का चरण आसान है।" (From chief magician, the step to chief or king is simple.)।

4. **शक्ति (Force)** : शक्ति मनुष्यों को एकता के सुत्र में बांधती रही है। राज्य के प्रारम्भिक विकास में शक्ति ने भी श्रेष्ठ योगदान दिया है। वोल्टेयर की इस बात में सत्यता के अंश दिखाई देते हैं कि "प्रथम सम्राट एक

भाग्यशाली योद्धा था।" (The first king was a fortunate warrior.)। जैंक्स के मतानुसार युद्धों ने राज्य को जन्म दिया। जैंक्स के अपने शब्दों में, "इतिहास के आधार पर यह बात अत्यंत सरलता के साथ सिद्ध की जा सकती है, कि आधुनिक राजनीतिक संगठनों का प्रादुर्भाव युद्ध द्वारा हुआ है।" (Historically speaking there is not the slightest difficulty in proving that Political communities of the modern type owe their existence to successful warfare.)।

युद्ध या संघर्ष विजेता और विजित में संबंध स्थापित करता है। शक्तिशाली विजयी होकर जीते हुए लोगों तथा प्रदेशों पर अधिकार कर लेते हैं और निर्बल अपनी हार मानकर समर्पण कर देते हैं। इस प्रक्रिया में एक विजयी कबीला अपने विरोधियों को दबा लेता है, तथा उसका शासनाधिकार स्थापित होने के कारण उसके प्रभुत्व को स्वीकार कर लिया जाता है, और इस प्रकार राज्य का विकास होता है।

5. **आर्थिक गतिविधियां (Economic Activities)** : राज्य की उत्पत्ति और विकास में आर्थिक गतिविधियों का भी प्रमुख हाथ रहा है। गैटल ने लिखा है कि, "आदिम व्यक्ति की आर्थिक गतिविधियों ने राज्य की उत्पत्ति के कई पक्षों से योगदान दिया। धन और धन्धे के भेदभाव ने सामाजिक श्रेणियां या जातियां पैदा की। आर्थिक लूट के लिए एक श्रेणी की दूसरी श्रेणी पर प्रभुसत्ता सरकार के विकसित होने का बहुत महत्वपूर्ण कारण था। दौलत की वृद्धि और निजी सम्पत्ति अधिकारों की रक्षा करने, उन्हें नियमित करने संबंधित झगड़ों का निर्णय करने के लिए कानून की आवश्यकता पड़ी।त्त अधिकारों की रक्षा करने, उन्हें नियमित करने संबंधित झगड़ों का निर्णय करने के लिए कानून की आवश्यकता पड़ी।"

प्लेटो, मैंक्यिावली, हाब्स, लॉक एडम स्मिथ और माण्टेस्क्यू ने भी राज्य की उत्पत्ति और विकास में आर्थिक तत्वों के योगदान को स्वीकार किया है। कार्ल मार्क्स ने कहा है कि "राज्य आर्थिक परिस्थितियों की अभिव्यक्ति है।" आदिम काल से अब तक मनुष्य चार आर्थिक अवस्थाओं में होकर गुजरा है :–

1. **आखेट (Hunting Stage)** – में मनुष्य के जीवन का एक मात्र साधन शिकार था और इसी कारण मनुष्य का जीवन अस्थिर था।

2. **पशुपालन अवस्था (Herdsmen Stage)** – में मनुष्य पशु पाल कर अपना गुजारा करते थे। इस अवस्था में भी उनका जीवन भ्रमण शील था।

3. **कृषि अवस्था (Husbandment Stage)** – में जीवन का आधार कृषि हो जाने पर मनुष्य निश्चित स्थान पर स्थायी रूप से रहने लगे। इससे निजी सम्पत्ति का उद्‌य हुआ, समाज में वर्ग पैदा हो गये और संघर्ष बढ़े, ऐसी स्थिति में कानून, न्यायालय और राजनीतिक सत्ता की स्थापना हुई।

4. **औद्योगिक अवस्था (Industrial Stage)** – में आर्थिक जीवन के जटिल और विशाल ढांचे ने राष्ट्रीय राज्यों को जन्म दिया।

राजनीति चेतना (Political Consciousness)

टी॰एच॰ ग्रीन (T.H. Green) तथा गिलक्राइस्ट के अनुसार राज्य के निर्माण में राजनीतिक चेतना की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण है। राजनीतिक चेतना के अभाव में किसी भी राजनीति संगठन की स्थापना नहीं हो सकती। टी॰एच॰ ग्रीन (T.H. Green) के मतानुसार "मानवीय चेतना स्वतंत्रता की धारणा को बनाती है, स्वतंत्रता की धारणा अधिकारों की, और अधिकार राज्य की मांग करते हैं।" (Human consciousness postulates liberty, liberty involves rights and

the rights demand a State.)। इस तथ्य का समर्थन करते हुए गिलक्राइस्ट का कथन है, कि "राज्य–निर्माण के सभी तत्वों की तह में, जिनमें वंश–संबंध और धर्म भी सम्मिलित हैं, राजनीतिक चेतना है, और यह सबसे मुख्य तत्व है।" (Underlying kinship and religion is political consciousness, the supreme element.)

निष्कर्ष (Conclusion)

राज्य की उत्पति के संबंध में ऐतिहासिक या विकासवादी सिद्धांत ही सबसे ठीक है, जिसके अनुसार राज्य किसी एक तत्व के द्वारा नहीं वरन् बहुत से तत्वों जैसे सामाजिक प्रवृत्ति, रक्त–संबंध, धर्म, शक्ति, आर्थिक गतिविधियां और राजनीतिक चेतना – सभी तत्वों के द्वारा सामूहिक रूप से राज्य का विकास हुआ है। रक्त–संबंध पर आधारित परिवार, राज्य का सबसे प्राचीन रूप था, धर्म ने इन परिवारों को एकता प्रदान की और आर्थिक गतिविधियों ने व्यक्तियों को संगठित होने के लिए प्रेरित किया, इसके साथ ही शक्ति और राजनीतिक चेतना ने राज्य के रूप को स्पष्टता और व्यापकता प्रदान की इस प्रकार राज्य का जनम हुआ और उसने विकास करते–करते अपने वर्तमान स्वरूप को प्राप्त किया। गैटेल के शब्दों में "राज्य का दूसरी सामाजिक संस्थाओं की तरह कई स्त्रोतों और परिस्थितियों से विकास हुआ और अप्रत्यक्ष रूप से इसका अस्तित्व बन गया। आरम्भ की सामाजिक संस्थाओं और राज्यों में कोई विशेष अंतर नहीं किया जा सकता जो धीरे–धीरे एक दूसरे में सम्मिलित हो गई।" गार्नर ने सत्य ही कहा है, कि "राज्य न तो ईश्वर की रचना है, न वह उच्च कोटि के शारीरिक बल का परिणाम है, न किसी प्रस्ताव या समझौते की कृति है, ना और परिवार का ही विस्तृत रूप है, राज्य एक कृत्रिम संस्था नहीं है, वरन् एक प्राकृतिक संस्था है, जिसका ऐतिहासिक आधार पर विकास हुआ है।"

1.4.19 मार्क्सवादी सिद्धांत (Marxist Theory)

राज्य की उत्पति के विषय में विभिन्न सिद्धांतों मार्क्सवादी सिद्धांत में सबसे अधिक क्रांतिकारी सिद्धांत है। इसने न केवल राजनीति विचारधारा को नई दिशा दी है बल्कि विश्व राजनीति को बहुत अधिक प्रभावित किया है। मार्क्स ने राज्य के संबंध में अपने विचार अपनी पुस्तक 'कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो' में दिए हैं।

मार्क्स (Marx) के अनुसार, राज्य कभी कल्याणकारी संस्था नहीं रहा और न कभी ऐसा हो सकता है। यह सदैव एक ऐसा संगठन रहा है और जिसके द्वारा प्रधान आर्थिक वर्ग दूसरे आर्थिक वर्गों के ऊपर शासन करता है और उनका शोषण करता है। एंजिल्स के अनुसार, "राज्य एक संगठित अत्याचार के अतिरिक्त कुछ नहीं है, राज्य की उत्पति ही इन अत्याचारी पूंजीपतियों व श्रमिकों के शोषण के उद्देश्य से की है।" (The State nothing more than an organised oppression. The State comes into being when governing class finds its need for the protection of an organised coercive power to maintain existing property relationship.)

राज्य की उत्पति (Origin of State)

मार्क्सवादी विचारक राज्य को न तो ईश्वरीय संस्था मानते हैं और न ही किसी समझौते का परिणाम। उनके विचारानुसार राज्य की उदय सामाजिक विकास के फल–स्वरूप हुआ है। ये समाज के दो वर्गों के बीच संघर्ष का परिणाम है। एंजिल्स (Engels) के शब्दों में "राज्य किसी प्रकार की समाज पर बाहर से लादी गई शक्ति नहीं है। इसी प्रकार राज्य राजनीतिक विचार की वास्तविकता या 'बुद्धि की पूर्ति और वास्तविकता' भी नहीं है, जैसा कि हीगल का दावा हैं, राज्य विकास की एक खास मंजिल पर समाज की एक उपज है।" (The State it, therefore, by no means power forced on society on them just as little as it is reality of the ethical idea, the image and reality of reason, as Hegal maintains, rather it is a product of society at a certain stage of development.)।

राज्य की उत्पत्ति की मार्क्सवादी धारणा को समझने के लिए मार्क्स के निम्नलिखित ऐतिहासिक कालों को समझना अति आवश्यक है :–

1. **प्रारम्भिक समाज (Primitive Society)** : एंजिलस के अनुसार मानव इतिहास में ऐसा समय रहा है जब राज्य नहीं था। प्रारम्भिक समाज में लोगों की आवश्यकताएं बहुत कम थी, इस लिए उत्पादन के तरीके भी बहुत सरल थे। लोग फल–फूल खाकर या पशुओं का शिकार करके अपना निर्वाह करते थे। प्रारम्भिक समाज वर्गहीन था। इस युग के मार्क्सवादियों ने 'आदिम साम्यवाद' (Primitive Communism) के नाम से पुकारा है। एंजिल्स के शब्दों में "राज्य आदिकाल से अस्तित्व में नहीं था। ऐसे समाज भी रहे हैं जो इसके बिना थे उनमें राज्य तथा राज्यसत्ता की कोई धारणा नहीं थी।" (The State then has not existed from all eternity. There have been socities that did without it, that had no conception of the State and State's power.)

2. **दासों पर स्वामित्व वाला समाज (Slave Owning Society)** : एंजिल्स के मतानुसार समय बीतने के साथ–साथ उत्पादन प्रणाली में अंतर आने लगा। कुछ कबीलों ने भेड़–बकरी, गाय, जैसे पशुओं को मारने के स्थान पर उन्हें पालना शुरू कर दिया। इससे समाज में दो प्रकार के वर्ग हो गए – एक वे जिन्होंने पशुपालन शुरू किया और दूसरे, वे जिन्होंने उत्पादन की पहली अवस्था को बनाए रखा। एंजिल्स ने इसे श्रम का पहला महत्वपूर्ण सामाजिक विभाजन माना है। (The first great social division of labour)। पशु पालन करने वाले कबीलों ने अपनी आवश्यकताओं से अधिक उत्पादन आरम्भ कर दिया। पशुपालन के पश्चात् धीरे–धीरे मनुष्य खेती करने लगा। इससे कबीले स्थायी रूप से रहने लगे। एक कबीला दूसरे कबीले को युद्ध में हराकर उसके सदस्यों को गुलाम बना लेता था, और उनसे खेती का काम करवाता था। इससे गुलाम प्रथा का आरम्भ हुआ। गुलाम–प्रथा ने समाज को दो वर्गों में बांट दिया – मालिक वर्ग तथा दास। इस संबंध ने लेनिन ने कहा है, कि "मौलिक बात यह है कि गुलामों को इंसान नहीं माना जाता था–उन्हें नागरिक गिनना तो दूर रहा, मानव भी नहीं समझा जाता था।" यहीं से शोषण की शुरूआत हुई और इसी से राज्य संस्था का उदय हुआ। गुलामों पर अधिकार रखने के लिए मालिक हिंसा और दमन का सहारा लेने लगे। मालिकों में बड़ा मालिक शासक बन बैठा। राज्य का आकार बहुत छोटा होता था। ये राज्य बहुत कमजोर थे और उनका उद्देश्य गुलामों का दमन करना तथा शोषण करना था।

3. **सामन्ती राज्य (Feudal State)** : राज्य का तेजी से विकास सामन्ती युग में हुआ। धन के उत्पादन में भूमि का महत्व बढ़ जाने के कारण सामन्ती युग का आरम्भ हुआ। भूमि का मालिक राजा समझा जाता था। राजाओं ने अपने साथियों में भूमि को बांट दिया, जिन्हें जागीरदार या सामन्त कहा जाता था। जागीरदार या सामन्त स्वयं खेती नहीं करते थे, वे किसानों को अपनी भूमि दे देते थे, जो श्रमिक दासों के जरिए उस पर खेती – बाड़ी करते थे। समाज स्पष्ट रूप से दो वर्गों में विभाजित हो गया – एक ओर भूमिपति और व्यापारी थे जिनके हाथ में सत्ता थी, जबकि दूसरी ओर किसान तथा दास थे, जिनका शोषण किया जाता था।

4. **पूंजीवादी राज्य (Capitalist State)** : मशीनों के आविष्कार से बड़े–बड़े कारखानों की स्थापना होने लगी। हाथ से काम करने वाले कारीगरों के लिए गांव को छोड़कर शहरों की ओर जाना उनकी मजबूरी हो गयी। उद्योगपतियों को इस तरह सस्ते मजदूर मिलने लगे। उद्योगपतियों ने कारखाने खोलकर श्रमिकों का शोषण किया और वे दिन–प्रतिदिन अधिक धनवान बनते चले गये। इस प्रकार पूंजीवादी व्यवस्था में समाज दो वर्गों में बंट गया – पूंजीपति वर्ग और श्रमिक वर्ग। लोकतंत्र बिल्कुल सीमित था, क्योंकि अधिकांश भाग में श्रमिक वर्ग आर्थिक अभाव के कारण शोषित था, तथा राजनीतिक व्यवस्था की संरचनाओं पर पूंजीपति वर्ग का

नियंत्रण था। इस पूंजीवादी शोषण के विरूद्ध मजदूर वर्ग क्रांति करेगा और पूंजीवादी राज्य को नष्ट कर देगा।

5. **संक्रमण कालीन राज्य तथा सर्वहारा वर्ग की तानाशाही (Transitional state and dictatorship of the Proletariat) :** पूंजीवादी राज्य को समाप्त करके सर्वहारा वर्ग अपनी तानाशाही की स्थापना करेगा तथा समाजवादी समाज की स्थापना करने का प्रयत्न करेगा। समाजवादी समाज में सभी वर्ग समाप्त हो जायेंगे। जिस प्रकार एक फूल अपने पूर्ण विकास के बाद स्वयंमेव मुरझा जाता है उसी प्रकार अंतः में राज्य–रूपी फूल की पंखुड़ियां भी कुम्हलाकर या म्लान होकर गिर जाएंगी और यह संस्था पृथ्वी से लुप्त हो जायेगी। राज्य के लोप होने के पश्चात् आदर्शवादी समाजवादी समाज की स्थापना होगी। इसमें मनुष्य पहली बार पूर्ण स्वतंत्रता का उपभोग करेगा। उत्पादन के साधनों पर समाज का नियंत्रण होगा। "प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुसार काम करेगा और उसे उसकी आवश्यकतानुसार मिलेगा।" (Everyone will work according to his capacity and will get according his needs.)

एंजिल्स ने इस संबंध में लिखा है, "अंत में जब राज्य समूचे समाज का वास्तविक प्रतिनिधि बन जाता है, तो अपने को फालतू बना देता है, उस समय समाज के किसी अंश को पराधीन बनाकर रखने वाला कोई वर्ग नहीं होता, इसलिए इस समय दमन करने योग्य कोई तत्व न होने के कारण राज्य की दमनकारी शक्ति की आवश्यकता नहीं होती। अतः राज्य का अंत नहीं किया जाता, बल्कि इसकी व्यवस्था स्वयं विलुप्त होकर समाप्त हो जाती है। एंजिल्स ने 'परिवार' व्यक्तिगत सम्पत्ति तथा राज्य का उदगम में कहा है कि वह युग आने वाला है, जब राज्य संग्रहालयों में रखी जाने योग्य वस्तुएं चरखे या कांसे के कुलहाड़ी की भांति अतीत काल की वस्तु बन जाएगा।"

मार्क्स की राज्य संबंधी धारणा की आलोचना (Criticism of concept of State of Marxism)

1. **दो वर्गों का सिद्धांत–गलत (The theory of two classes is wrong)** : इस सिद्धांत के अनुसार समाज में दो वर्ग हैं, जबकि वास्तव में वर्तमान समाज में तीन मुख्य वर्ग हैं – पूंजीपति वर्ग, श्रमिक वर्ग तथा मध्यम वर्ग, इसलिए द्विवर्गीय सिद्धांत को स्वीकार नहीं किया जा सकता।

2. **राज्य का आधार बल नहीं है (Force is not the basis of State)** : मार्क्स के अनुसार राज्य बल पर आधारित है, यह एक गलत धारणा है, क्योंकि बल राजनीतिक संस्था का स्थाई आधार नहीं हो सकता। इसलिए राज्य टी॰एच॰ ग्रीन के अनुसार "इच्छा न कि शक्ति राज्य का आधार है।" (Will not the force, is the basis of the state.)

3. **आर्थिक तत्वों पर अत्याधिक बल (Too much emphasis on economic factors)** : कार्ल मार्क्स ने राज्य की उत्पत्ति संबंधी सिद्धांत में आर्थिक तत्वों पर अधिकाधिक बल दिया है तथा अन्य तत्वों की अवहेलना की है। मार्क्स की यह धारणा गैर ऐतिहासिक है।

4. **राज्य वर्ग, संघर्ष का परिणाम नहीं है (State is not a result of class struggle)** : मार्क्सवादी सिद्धांत की यह धारणा कि राज्य वर्ग संघर्ष का परिणाम है – गलत है, क्योंकि राज्य एक विकसित संस्था है, निर्मित नहीं (State is a growth not a make)

5. **राज्य रहित समाज–एक कल्पना (Stateless society is an imagination)** : मार्क्स की यह धारणा कि पूंजीवादी राज्य के समाप्त होने के पश्चात् मजदूर वर्ग की तानाशाही की स्थापना होगी, वर्गरहित समाज की

स्थापना होगी, वर्गों के समाप्त होने पर राज्य भी समाप्त हो जाएगा, यह एक कल्पना मात्र है, क्योंकि रूस, चीन, तथा विश्व के अन्य साम्यवादी राज्यों में मजदूर वर्ग की तानाशाही सुदृढ़ होती जा रही है। इन देशों में, न तो वर्ग रहित समाज की स्थापना हुई, और न ही राज्य समाप्त हुआ।

1.4.20 निष्कर्ष (Conclusion)

उपर्युक्त आलोचनाओं के बावजूद भी साम्यवादी विचारधारा एक महत्वपूर्ण विचारधारा है। गैटल के मतानुसार "प्रारम्भिक व्यक्तियों" की आर्थिक गतिविधियों ने राज्य की उत्पत्ति में कई पक्षों ने हिस्सा डाला है। धन और देशों के भेद–भाव ने सामाजिक श्रेणियां या जातियां पैदा की। आर्थिक शोषण के लिए एक वर्ग की दूसरे वर्ग पर प्रभुसत्ता, सरकार के विकसित होने का बहुत महत्वपूर्ण कारण था। दौलत की वृद्धि और सम्पत्ति का विचार विकसित होने के कारण सम्पत्ति के अधिकारों की रक्षा करके उन्हें नियमित करने संबंधी और संबंधित झगड़ों का निर्णय करने के लिए कानूनों की आवश्यकता पड़ी।"

1.4.21 मुख्य शब्दावली

1.4.22 अभ्यास हेतू प्रश्न

1. हाब्स, लॉक व रूसों के विचारों के संदर्भ में सामाजिक समझौते के सिद्धांत की आलोचनात्मक व्याख्या करो।

   (Critically examine the Social Contract Theory with special reference to the views of Hobbes, Locke and Rousseau.)

2. "राज्य की उत्पत्ति से संबंधित सामाजिक समझौते के सिद्धांत को बुरा इतिहास, बुरा दर्शन और बुरा कानून कहा गया है।" विवेचना कीजिए।

   (The Social Contract Theory about the origin of the State has been described as bad history, bad philosophy and bad law. Discuss)

3. रूसों की 'सामान्य इच्छा' की अवधारणा की व्याख्या व आलोचना कीजिए।

   (State and critcise Rousseau's Concept of General Will.)

4. "राज्य बनाया नहीं गया, अपितु विकास हुआ है।" व्याख्या करो।

   (The State is a growth and not a make. Explain)

5. राज्य की उत्पत्ति के विभिन्न सिद्धांतों में से कौन–सा सिद्धांत आपको सर्वाधिक मान्य है? अपने विचारों के पक्ष में तर्क दें।

   (Which of the various theories of the origin of the State is most acceptable to you? Give reasons to support your views.)

1.4.23 संदर्भ सूची

- N.P. Barry. Introduction to Modem Political Theory, London, Macmillan, 1995.
- M. Carnoy, The State and Political Theory, Princeton NJ, Princeton University Press, 1984.

- G. Catlin, A Study of the Principles of Politics, London and New York, Oxford University Press, 1930.
- N.J. Hirschman and C.D. Stefano (eds.), Revisioning the Political Feminist Reconstruction of Tradition concepts in Western Political Theory, West View Press, Harper Collins, 1996.
- D. Heater, Citizenship: The Civic Ideal in World History, Political and Education, London, Orient Longman, 1990.
- D. Held, Models of Democracy, Cambridge, Polity Press, 1987, G Mclellan, D. Held and S. Hall (eds.), The Idea of the Modem Slate, Milton Keynes, Open University Press, 1984.
- D. Miller, Social Justice, Oxford, The Clarendon Press, 1976.
- D. Miller, (ed.), Liberty, Oxford, Oxford University Press, 1991.
- D. Miller, Citizenship and National Indentities, Cambridge, Polity Press, 2000.
- S. Ramaswamy, Political Theory: Ideas and concepts, Delhi Macmillan, 2002.
- R.M. Titmuss, Essays on the Welfare State, London, George Allen and Unwin, 1956.
- F. Thakurdas. Essays on Political Theory, New Delhi, Gitanjali, 1982.
- J. Waldron(ed.), Theories of Rights, New Delhi, Oxford University Press 1984.
- S. Wasby, Political Science: The Discipline and its Dimensions, Calcutta, Scientific Book Agency, 1970.

1.5 राज्य के सम्बन्ध में विभिन्न दृष्टिकोण

1.5.1 परिचय

गार्नर (Garner) के अनुसार ''राज्य की उत्पत्ति, स्वरूप, कार्यक्षेत्र तथा उद्देश्यों के विषय में प्रत्येक विचारधारा कुछ विशेष सिद्धान्तों की समर्थक है, और ये सिद्धान्त रूप एवं तथ्य की दृष्टि से बहुधा भिन्न हैं।'' (Each is partisam of particular theories regarding the origin, nature, sphere, function and ends of the state and their various theories often differ, one from another in form and substance.) प्रत्येक विचारक ने अपने–अपने दृष्टिकोण के अनुसार राज्य पर विचार किया है और उसे उन लक्ष्यों से युक्त माना है जो उसकी विचार प्रणाली के अनुसार होते हैं। उदाहरणार्थ, समाजशास्त्री राज्य को एक सामाजिक तत्य के रूप में मानते हैं; इतिहासकार इसको ऐतिहासिक विकास का फल मानते हैं; नैतिक दार्शनिक इसको नैतिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए एक संस्था मानते हैं; मनोवैज्ञानिक इसको एक ऐसा संगठन मानते हैं जो अपनी इच्छा भौतिक कानूनों के अनुसार प्रकट करता है; राजनीति शास्त्री इसको एक ऐसी संस्था मानते हैं, जो शांति और व्यवस्था हेतु बनी है; और विधि शास्त्री इसको एक ऐसी संस्था मानते हैं जो कानूनों की उत्पत्ति और कानूनों के अधिकारों की रक्षा हेतु बनी है। इस प्रकार विभिन्न विद्वानों ने राज्य के संबंध में विभिन्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है।

1.5.2 उद्देश्य

- राज्य से संबंधित मार्क्सवादी धारणा को जानना।
- उदारवादी दृष्टिकोण की राज्य के विकास में भूमिका को समझना।
- राज्य के बारे में गाँधी जी के आर्दश राज्य की परिकल्पना को जानना।
- मार्क्सवादी व उदारवादी धारणा का तुलनात्मक अध्ययन करके राज्य के बारे में जानना।

1.5.3 राज्य सम्बन्धी मार्क्सवादी धारणा / राज्य के स्वरूप सम्बन्धी मार्क्सवादी धारणा

(Marxian Views of the State / Marxian View of the nature of State)

कार्ल मार्क्स (Karl Marx) द्वारा विश्व को एक महत्वपूर्ण विचारधारा दी गई जिसे (Communism), वैज्ञानिक समाजवाद (Scientific Socialism) कहा जाता है। कार्ल मार्क्स की महान कृतियों में कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो (Communist Manifestio) और दास कैपिटल (Das Capital) विशेष रूप से वर्णनीय है। फ्रैड़िक एंजिल्स (Fredirick Engnles) नाम का एक और जर्मन नागरिक कार्ल मार्क्स (Karl Marx) का घनिष्ट मित्र था। कार्ल मार्क्स की रचनाओं को पूरा करने में एंजिल्स (Engles) की बहुत अधिक देन थी। एंजिल्स की कुछ अपनी रचनाएँ थी। ''परिवार निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति (Origin of the Family, Private Porperty, and state) कार्ल मार्क्स (Karl Marx) के शिष्यों में लेनिन (Lenin) की भी कुछ महत्वपूर्ण रचनाएँ जिन में से प्रमुख 'राज्य और क्रान्ति' (State and Revolution) विशेष रूप में वर्णनीय है। कार्ल मार्क्स (Karl Marx), एंजिल्स (Engles) और लेनिन (Lenin) ने राज्य संबंधी जो विचार अपनी कृतियों में व्यक्त किए हैं। उनको, सामूहिक रूप में ''राज्य की मार्क्सवादी धारणा'' (Marxian Nation of the State) कहा जाता है। राज्य सम्बन्धी मार्क्यवादी धारा की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैंः–

राज्य वर्ग–संघर्ष की उत्पत्ति है (State-result of Class Struggle)

मार्क्स के अनुसार राज्य एक वर्ग–संघर्ष की उत्पत्ति है। आदिम साम्यवादी समाज में राज्य नहीं था। क्योंकि उस समय समाज में वर्ग नहीं थे। परन्तु जैसे ही समाज में साम्यवादी व्यवस्था समाप्त हुई और व्यक्तिगत सम्पत्ति के उदय के साथ–साथ समाज दो वर्गों में बंट गया और राज्य की भी स्थापना हो गई। अतः विभिन्न वर्गों के संघर्ष के कारण राज्य का जन्म हुआ। लेनिन (Lenin) के शब्दों में ''कहाँ, कब और किस हद तक राज्य का जन्म होता है, यह प्रत्यक्ष रूप से इस बात पर निर्भर करता है कि कब, कहाँ और किस हद तक राज्य विशेष के विरोध में सामंजस्य स्थापित नहीं किया जा सकता और इसके व्यक्तिक्रम से राज्य का अस्तित्व यह सिद्ध करता है कि वर्ग सम्बन्धी विरोध में भी सामंजस्य स्थापित नहीं हो सकता है।'' (Where, when and to what extent, the state arises depends directly on when, where and to what extent the class antagonisms of a given society can not be objectively reconciled, and coversely, the existence of the State proves that class antagonism are irreconcilabl.)

शोषक पक्ष का समर्थक (Protector of Exploiting Class)

मार्क्स (Marx) के अनुसार, ''राज्य सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता। यह तो उसका समर्थक रहा है, जिसका उत्पादन के साधनों पर प्रभुत्व होता है। राज्य की सत्ता का प्रयोग शीर्षक वर्ग अपने हितों के लिए करता है, और राज्य श्रमिकों का शोषण करने में पूंजीपतियों का समर्थन करना है।'' एंजिल्स (Engels) ने कहा है ''राज्य एक शोषण के यन्त्र से अधिक कुछ नहीं है, जो एक वर्ग के द्वारा दूसरे वर्ग के विरूद्ध प्रयोग किया जाता है।'' (State is nothing but an instrrument of exploitation which is being used by one class against another.)

सावर्जनिक कल्याण का विरोधी (Welfare state is means to save capitalist system)

राज्य जनता के हित का विरोधी है। राज्य पुलिस, सेना व कानून की व्यवस्था को जनता के हित में बताकर पूंजीपतियों की रक्षा करता है। राज्य यातायात, संचार की व्यवस्था की उन्नति भी वास्तव में पूंजीपतियों के हितों को ध्यान में रखकर ही करता है। जन–कल्याण का नाम लेकर राज्य के पूंजीपतियों का पोषण करता है।

राज्य केवल कष्टदायक (State-An exploiting Institution)

मार्क्य (Marx) के अनुसार, राज्य सदैव कष्टदायक रहा और रहेगा। राज्य तो गरीबों, श्रमिकों तथा अन्य असहाय लोगों को कष्ट देने का एकमात्र साधन है। मार्क्स (Marx) ने स्वयं लिखा है ''राज्य का बल एक ऐसी चक्की है। जो शोषित वर्ग को पीस डालती है।''

सर्वहारा–वर्ग का अधिनायकत्व तथा राज्यविहिन काल की कल्पना (Dictatorship of Proletariat and Withering of State)

मार्क्स (Marx) का विश्वास था कि एक दिन ऐसा अवश्य आएगा जब पूंजीवाद का नाश हो जाएगा। श्रमिक वर्ग संगठित होकर एक दिन क्रान्ति द्वारा पूंजीपतियों से सत्ता छीन लेंगे और श्रमिक वर्ग अथवा सर्वहारा वर्ग की तानाशाही की स्थापना होगी। मार्क्स (Marx) ने अपने ग्रन्थ (Critique of the Grotha Programme) में लिखा है कि, ''पूंजीवादी और साम्यवादी समाज के बीच एक–दूसरे में परिवर्तन होने का क्रान्तिकारी काल रहा। इसी के अनुरूप एक राजनीतिक संक्रान्ति काल (Interim Period) भी होता है जो केवल क्रान्तिकारी श्रमजीवी की तानाशाही हो सकता है।'' सेबाइन (Sabine) ने लिखा है ''वर्गहीन समाज में भी अधिक महत्वपूर्ण काल आधिनायकवाद का था। मार्क्स तथा एंजिल्स (Marx and Engles) के अनुसार सर्वहारा वर्ग की क्रान्ति के तुरन्त बाद यह स्थापित होता है। इस अवस्था में यह

कल्पना की जाती है कि सर्वहारा वर्ग शक्ति छीन लेता है और एक ऐसे राज्य का निर्माण करता है जो अपनी ओर से बल का प्रयोग करता है। जब पूंजीवाद का पूर्ण विनाश हो जाएगा और राज्य समस्त समाज का वास्तविक प्रतिनिधि बन जाएगा तब राज्य आवश्यक हो जाएगा। एंजिल्स (Engles) ने इस सम्बन्ध में लिखा है, ''अन्त में जब राज्य समूचे समाज का वास्तविक प्रतिनिधि बन जाता है तो अपने को फालतू बना देता है। इसलिए राज्य का अन्त नहीं किया जाता है, बल्कि इसकी व्यवस्था स्व्यंमेव विलुप्त होकर समाप्त हो जाती है।'' मार्क्स ने परिवार, वैयक्तिक सम्पत्ति तथा राज्य का उदगम् में कहा है कि ''वह युग आने वाला है जब संग्रहालय में रखी जाने योग्य प्राचीन वस्तुओं – चरखे या कांसे के कुल्हाड़े की भाँति अतीत काल की वस्तु बन जाएगें।'' जिस प्रकार फूल अपने पूर्ण विकास के बाद स्वयंमेव मुरझा जाता है, उसी प्रकार अन्त में राज्यरूपी फूल की पंखुड़ियाँ भी कुम्हला कर या म्लान होकर गिर जाएगी और यह संस्था पृथ्वी से लुप्त हो जाएगी।

1.5.4 मार्क्सवादी धारणा की आलोचना

(Criticism of Marxian Views)

राज्य संबंधी मार्क्सवादी धारणा की निम्नलिखित आधारों पर आलोचना की जाती है :–

अनैतिहासिक (Unhistorical)

यह ऐतिहासिक सत्य है कि राज्य का जन्म इतिहास की किसी तिथि को नहीं हुआ है, अपितु समय की गति के साथ–साथ विकास हुआ है। राज्य की उत्पत्ति इतिहास के किसी विशेष काल में नहीं हुई थी, वरन् इसका धीरे–धीरे विकास हुआ है। मार्क्सवादी विचारधारा का यह विचाा सही नहीं है कि आर्थिक पक्ष से शक्तिशाली श्रेणी ने अपने हितों की सुरक्षा के लिए राज्य रूपी राजनीतिक संस्था का विकास किया।

विभाजन दो परस्पर विरोधी आर्थिक वर्गों में सम्भव नहीं है। (Division into two Mutual Hostile classes-not possible)

मार्क्सवादी धारणा का यह मत स्वीकार नहीं किया जा सकता, कि राज्य की उत्पत्ति समाज के दो परस्पर विरोधी आर्थिक वर्गों में विभाजित किये जाने के कारण हुई थी। परस्पर आर्थिक वर्गों के अस्तित्व से कोई भी समाज बच नहीं सकता है। परन्तु समाज का यह वर्ग–विभाजन राज्य की उत्पत्ति का एक ही कारण नहीं हो सकता।

श्रेणी विभाजन को कठोर रूप में निश्चित नहीं किया जा सकता है। (Class Division cannot be rigidly fixed)

मार्क्सवादी धारणा ने समाज में श्रेणी विभाजन को कठोर रूप से निश्चित किया है, जोकि व्यावहारिक रूप से सम्भव नहीं है। किसी भी समाज में केवल दो ही श्रेणियाँ नहीं हो सकती। इसलिए जहाँ लोगों की मध्य श्रेणी (Middle class) है वहाँ निम्न स्तर की मध्य श्रेणी (Lower class) और उच्च स्तर की मध्य श्रेणी भी पाई जाती है।

राज्य वर्ग संगठन नहीं है (State is not a class organisation)

ऐंजल्स और लेनिन दोनों ही इस विचार के हैं कि राज्य समाज के वर्ग विरोध को नियंत्रित करने के लिए अस्तित्व में आया था। ऐंजल्स (Engles) का कथन है कि ''राज्य की उत्पत्ति वर्ग विरोध को निंयत्रित करने की आवश्यकता के कारण हुई थी परन्तु साधारणतया राज्य सर्वाधिक सशक्त और आर्थिक पक्ष से मुख्य वर्ग का राज्य है। यह वर्ग राज्य के साधन द्वारा राजनीतिक पक्ष से भी मुख्य वर्ग बन गया है। इस तरह इसमें दलित वर्ग को दबाए रखने के लिए और उनका शोषण करने के लिए एक नया साधन प्राप्त कर लिया है।'' ("The state arose from the nee to hold clas antagonism in check-it is, as a rule, the State of the most powerful economically dominant class

which/through the medium of the State becomes also the politically dominant class and that acquires new means of holding down and exploiting the oppressed class.") ऐंजल्स (Engles) का यह विचार ठीक नहीं, कि राज्य आर्थिक पक्ष से सशक्त वर्ग का शोषक साधन है।

विश्व व्यापक सिद्धान्त नहीं (It cannot be a universal theory)

इस विशाल विश्व के विभिन्न भागों में विकसित हुई। राज्य की उत्पत्ति के विषय में एक ही सिद्धान्त स्वीकार करने योग्य नहीं हो सकता। यह एक स्थापित सत्यता है कि राज्य एक दीर्घ विकासक्रम की प्रक्रिया का परिणाम है। ऐंजल्स (Engles) और लेनिन (Lenin) के विकासवादी सिद्धान्त को विश्वव्यापक नहीं माना जा सकता।

एक विशेष दृष्टिकोण वाला सिद्धान्त (A theory with a specific approach)

कार्ल मार्क्स (Karl Marx) ने अपनी समस्त विचारधारा को एक ही दृष्टिकोण से देखा है। वह दृष्टिकोण आर्थिक तथ्य पर आधारित भौतिकवादी दृष्टिकोण है। मार्क्स (Marx) ने इतिहास का इस दृष्टिकोण से ही सर्वेक्षण किया है, उसमें लगभग प्रत्येक महान् ऐतिहासिक घटना या शक्ति को अन्तिम रूप में उत्पादन की विधि के साथ सम्बंधित किया है। ऐंजल्स (Engles) और लेनिन (Lenin) भी मार्क्सवाद के भौतिकवादी दृष्टिकोण को स्वीकार करते हैं।

सम्पत्तिशाली वर्ग के हितों का सुरक्षित यन्त्र नहीं (State/cannot be the protective mechanism of the interest of propertied class only)

यह ठीक है कि आर्थिक पक्ष से शक्तिशाली वर्ग के लोगों का राज्य के कार्यों में महत्त्वपूर्ण स्थान होता है, और राजनीतिक शक्ति सम्पत्तिशाली और पूंजीपति वर्ग के हाथों में ही होती है पर इसके बावजूद राज्य को केवल पूंजीपति वर्ग के हितों पर सुरक्षित यन्त्र नहीं माना जा सकता है। यदि ऐसा होता तो आधुनिक लोकतन्त्रीय युग में लोकशक्ति ने राज्य की संस्था को बिल्कुल ही समाप्त कर देना था।

राज्य विलुप्त नहीं हुआ है (State has not withered away)

मार्क्सवादी धारणा का यह मत था कि श्रमिकों का अधिनायकतन्त्र पूँजीपतियों का नाश करके समाज को श्रेणी रहित बना देगा। ऐसे रेणी रहित समाज मे राज्य धीरे–धीरे विलुप्त हो जाएगा, क्योंकि श्रेणियों को अस्तित्व न होने के कारण राज्य की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी, परन्तु वास्तव में यह सभी कुछ नहीं हुआ। सोवियत रूस, चीन और अन्य समाजवादी देशों में भी राज्य विलुप्त नहीं हुआ है।

निष्कर्ष (Conclusion)

इसमें कोई सन्देह नहीं, कि राज्य सम्बंधी मार्क्सवादी धारणा इतिहास के सत्यों और व्यावहारिक तथ्यों के पूर्ण अनुकूल नहीं है, परन्तु इस धारणा की इस सच्चाई को रद्द नहीं किया जा सकता कि आर्थिक तत्वों ने राज्य की उत्पत्ति, अस्तित्व और कार्यकुशलता सम्बंधी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह भी सत्य है कि आर्थिक पक्ष से शक्तिशाली लोग ही राजनीतिक पक्ष से भी शक्तिशाली होते हैं। संक्षेप में, मार्क्सवादी धारणा ने केवल आर्थिक पक्ष को बहुत अधिक महता दी है और राज्य सम्बंधी दूसरे तथ्यों को आंखों से ओझल करके राज्य के सम्बन्ध में अधूरी तस्वीर प्रस्तुत की है।

1.5.5 उदारवादी दृष्टिकोण (Liberalism View)

उदारवाद (Liberalism) एक महत्वपूर्ण राजनीतिक विचारधारा है। इस विधारधारा का प्रारम्भ 16वीं – 17वीं शताब्दी में हुआ था। इस विचारधारा को विकसित करने में एडम स्मिथ (Adam Smith) और रिकार्डो (Ricardo) आदि

अर्थशास्त्रियों की भी महत्वपूर्ण भूमिका थी। इस विचारधारा को विकसित करने में हाब्स (Hobbes), लास्की (Laski), बार्कर (Barker) मैकाईवर (Maciver) आदि विद्वानों ने भी उदारवाद को विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया था।

1.5.6 उदारवादी दृष्टिकोण के रूप

उदारवाद के प्रमुख दो रूप हैं :–

1. शास्त्री उदारवादी (Classical Liberalism)

उसका एक रूप शास्त्रीय उदारवादी (Classical) है। जिसका मुख्य समर्थक एडम स्मिथ, (Adm Smith) जान लॉक (John Locke) आदि विद्वान थे।

2. समकालीन उदारवादी (Contemporary Liberalism)

इसका दूसरा तथा अन्तिम रूप समकालीन उदारवादी (Contemporary Liberalism) है। जिसकें समर्थकों मे टी. एच. ग्रीन (T.H. Green) लॉस्की (Laski) मैकाईवर (Maciver) आदि समर्थकों के नाम मुख्य रूप से लिए जा सकते हैं।

1.5.7 उदारवाद का अर्थ
(Meaning of Liberalism)

एक ऐसा राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक वातावरण जो व्यक्ति की स्वतंत्रता (Liberty) और उसकी मानमर्यादा की रक्षा करे। उदारवाद की मुख्य मान्यता यह है कि ''व्यक्ति को बिना किसी अनुचित हस्तक्षेप के अपने भाग्य का निर्णय करने का अधिकार प्राप्त होना चाहिए।'' लॉस्की के अनुसार ''इसमें कोई सन्देह नहीं कि उदारवाद का सीधा सम्बंध स्वतंत्रता से है।'' (''Liberalism is no doubt, directly related to freedom'') अभिप्राय यह है कि सरकार अथवा समाज व्यकित पर अनुचित दबाव न डाले। व्यक्ति को यह अधिकार दिया जाए कि वह अपने ढंग से अपने जीवन का पूर्ण विकास कर सके। एडवर्ड स्मिथ (Edward Smith) लिखता है कि, ''उदारवाद एक तरह से 'अनुदारवाद' और उग्रवाद के बीच का मार्ग है।'' (Liberalism stands midway between conservatism and radicalism'') उदारवादी ''व्यक्ति के स्वतन्त्र और भरपूर विकास'' (freest and fullesrt development) में विश्वास रखते हैं और उन कानूनी प्रथाओं व विश्वासो का खात्मा चाहते हैं जो मानवीय विकास में बाधक है। हॉबहाऊस (Hobbhouse) अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'उदारवाद' (liberalism) में लिखता है कि, ''उदारवाद की मान्यता यह है कि व्यकित एक 'यंत्र' न होकर सजीव आत्मा (Living spiritual energy) है। एक सजीव व्यक्ति को अपने विकास के लिए स्वतन्त्रता का वातारण चाहिए।'' अभिप्राय यह है कि व्यक्ति कोई 'जड़ पदार्थ' या 'कल पुर्जा' नहीं है जिसे जहाँ चाहा, वहां फिट कर दिया। वह भले बुरे के बीच अन्तर कर सकता है। इसलिए राज्य अथवा समाज जबरदस्ती उससे अपनी आज्ञाओं का पालन नहीं करा सकता।

1.5.8 राज्य सम्बंधी उदारवादी दृष्टिकोण
(Liberal View about Stake)

उदारवादी के राज्य सम्बंधी सिद्धान्त निम्नलिखित हैं, जिनका वर्णन इस प्रकार किया जा सकता हैः–

मानवीय स्वतन्त्रता का पोषण (Supporter of human freedom)

उदारवाद का मूल सिद्धान्त है कि मनुष्य जनम से ही स्वतन्त्र है और स्वतन्त्रता उसका प्राकृतिक एवं जन्मसिद्ध

अधिकार है। स्वतन्त्रता उसका प्राकृतिक एवं जन्मसिद्ध अधिकार है। स्वतन्त्रता का अभिप्राय यह है कि मनुष्य के जीवन पर किसी स्वेच्छाकारी सत्ता का नियन्त्रण न हो और उसे अपने विवके के अनुसार आचरण, ''उदारवाद का स्वतन्त्रवाद हो लॉस्की (Laski) के अनुसार, ''उदारवाद का स्वतन्त्रता से सीधा सम्बंध है क्योंकि इसका जनम समाज के किसी वर्ग के द्वारा अथवा धर्म पर आधारित विशेषाधिकारों का विरोध करने के लिए हुआ है।''

मानवीय विवके में आस्था (Faith n Human Logic)

उदारवाद का मूल सिद्धान्त मानवीय बुद्धि और विवके में आस्था है। 17वीं तथा 18वीं शताब्दी में जान लॉक और टॉमस पेन जैसे उदारवादियों ने इस बात पर बल दिया कि मनुष्य को किसी भी ऐसे सिद्धान्त, कानून या परम्परा को नहीं मानना चाहिए जिसकी उपयोगिता बुद्धि से सिद्ध न होती हो। टामस पेन ने रूढ़िवादी परम्पराओं को चुनौती देते हुए कहा कि ''मेरा अपना म नही मेर चर्च है।''

राज्य एक मानव–निर्मित संस्था (State is a man-made institution)

उदारवादियों के विचारानुसार राज्य प्राकृतिक संस्था न होकर एक मानव निर्मित संस्था है। राज्य की स्थापना मनुष्यों ने अपने हित के लिए की है। आधुनिक उदारवादी राज्य को एक प्राकृतिक संस्था मानते हैं।

राज्य एक अनिवार्य संस्था है (State is a necessary Institution)

उदारवादी राज्य के एक आवश्यक संस्था मानते हैं। प्रारम्भिक उदारवादियों हाब्स (Hobbes), एडम स्मिथ (Adm Smith) हरबर्ट स्पैन्सर (Herbert Spencer) ने राज्य को 'एक आवश्यक बुराई' बताया है। राज्य 'बुराई' इसलिए है क्योंकि राज्य के कानून व्यक्ति की स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप करते हैं। परन्तु राज्य 'आवश्यक' भी है क्योंकि इसके बिना शान्ति की स्थापना नहीं की जा सकती।

इतिहास तथा परम्परा का विरोध (Opposition to History and tradition)

मध्य युग में अन्धविश्वास और रूढ़िवादी परम्पराओं का बोलबाला था। उदारवाद अंधविश्वासों और रूढ़ियों के विरूद्ध विद्रोह था। उदारवादियों ने इस बात पर जोर दिया कि उन्हीं संस्थाओं, सिद्धान्तों तथा कानूनों इत्यादि को स्वीकार किया जाए, जो विवके संगत हो उदारवाद के प्रभाव के कारण ही इंग्लैंड, अमेरिका और फ्रांस में क्रांतिया हुई।

राज्य साधन है और व्यक्ति साध्य (State is the means and individual is the end)

उदारवाद राज्य को साधन और व्यक्ति को साध्य मानते हैं। उनके अनुसार राज्य व्यक्ति के लिए है न कि व्यक्ति राज्य के लिए। व्यक्ति के उद्देश्य की पूर्ति करना ही राज्य का उद्देश्य है। लॉक (Locke) का कथन है कि राज्य व्यक्ति के हितों की पूर्ति के लिए साधन मात्र है। इसलिए राज्य को व्यक्ति के जीवन, सम्पत्ति तथा स्वतन्त्रता के अधिकारों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

राज्य की शक्तियाँ सीमित हैं (Limited Powers of the state)

उदारवादी सिद्धान्त राज्य को शक्ति का प्रतीत नहीं मानते हैं। उदारवादी राज्य को निरकुंश और असीमित शक्तियाँ देने के पक्ष में नहीं है।

उनके मतानुसार राज्य को कानून की सीमाओं में रहकर ही कार्य करना चाहिए। ग्रीन के अनुसार ''राज्य का निर्माण केवल सर्वोच्च दण्ड शक्ति से नहीं होता है, बल्कि एक ऐसी सर्वोच्च दण्ड शक्ति से होता है जिसे किसी साधन तथा उद्देश्य के लिए प्रयोग किया जाए अर्थात जिसका प्रयोग लिखित अथवा अलिखित कानून तथा अधिकारों को बनाए रखने के लिए किया जाए।''

राज्य का आधार–प्रजातन्त्र (Democracy is the basis of the state)

आधुनिक उदारवादियों के विचारानुसार राज्यसत्ता किसी वर्ग के पास न होकर विभिन्न वर्गो में बंटी होती है। प्रजातन्त्र में चुनाव होते हैं और समाज के सभी वर्गों के सदस्य राज्यसत्ता पर अपना दबाव डालते हैं। इन समाजों में नागरिकों को व्यस्क मताधिकार, स्वतन्त्र तथा नियमित चुनाव, प्रतिनिधि संस्थाए, प्रमाणिक अधिकार – जैसे भाषण की स्वतन्त्रता, समुदाय बनाना, विरोध करने का अधिकार आदि प्राप्त होते हैं।

संवैधानिक शासन (Constitutional Government)

उदारवाद का उदय निरंकुश एवं स्वेच्छाकारी शासन की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ। इसलिए उदारवाद निरंकुश शासन का विरोधी है। उदारवाद सीमित सरकार अर्थात सरकार की सीमित शक्तियों का समर्थन करता है।

व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकारों की धारणाा (Belief in the Concept of Natural Rights of Man)

उदारवाद व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकार वह अधिकार है जो व्यकित को जन्म से प्राप्त होते हैं। लॉक (Locke) के अनुसार, स्वतन्त्रता और सम्पत्ति के अधिकार प्रमुख प्राकृतिक अधिकार हैं। राज्य का कर्त्तव्य प्राकृतिक अधिकार है। राज्य का कर्तव्य प्राकृतिक अधिकारों की रक्षा करना है।

निष्कर्ष (Conclusion)

प्रारम्भिक उदारवादी सिद्धान्तों के राज्य सम्बंधी विचार स्वीकार नहीं किए जा सकते और इनको आधुनिक उदारवादी पहले ही परिवर्तित कर चुके हैं। इसलिए आधुनिक उदारवादियों की राज्य की धारणा का महत्व अत्यधिक है।

राज्य के स्वरूप सम्बंधी गाँधीवादी विचार (Gandhi view about the nature of State)

महात्मा गाँधी राजनीतिक विचारक नहीं थे। गांधी जी का बहुधा अराजकतावादी कहा जाता है। वे अराजकतावादियों की तरह राज्य का किसी भी रूप में विरोध करते थे। वे अन्य अराजकतावादियों की तरह राज्य–विहान समाज को आदर्श समाज मानते थे, परन्तु वे वाकुनिन (Bakunin) और क्रोपटाकिन (Kroptkin) की तरह क्रान्तिकारी अराजकतावादी नहीं थे। गाँधी जी (Gandhiji) ने कभी भी हिंसा के प्रयोग का समर्थन नहीं किया। गाँधी (Gandhi) ने अपने आदर्श राज्य को 'राम राज्य' और राज्य–विहीन लोकतन्त्र कहा है। गाँधीजी (Gandhiji) ने कहा है कि ''गाँधीवाद कोई वस्तु नहीं है। मैं इस बात का दावा नहीं करता कि मैंने किसी नये सिद्धान्त की रचना की है। मैंने केवल अपनी विधि के अनुसार अनन्त सत्य को दैनिक जीवन और समस्याओं में लागू करने का प्रयत्न किया है। जिन विचारों का मैंने निर्माण किया है या जिन निष्कर्षों पर मैं पहुँच हैं, वे अन्तिम नहीं है। मैं उनका कल ही परिवर्तित कर सकता हूँ। ("There is no such thing as Gandhism and I do not claim to have originated any new principle or doctrine. I have simply tried in my own way to apply the eternal truths through out daily life and problems. The things I have formed and the conclusion, have arrived at ar not final. I may change them tomarrow.")

यद्यपि गाँधीजी ने अपने विचारों को किसी विशेष वाद (Ism) का नाम देने का संकोच किया है, परन्तु फिर भी गाँधी जी की कृतियाँ और उनके द्वारा व्यक्त किये गये विचारों में राज्य सम्बंधी कुछ महत्वपूर्ण विचार अवश्य मिलते हैं। गाँधी जी के ऐसे विचारों को ही सामूहिक रूप से राज्य की गाँधीवादी विचार धारा (Gandhian Thought) कहा जाता है। इस धारणा की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :–

एक आत्मा रहित यन्त्र है (A Soulless Machine)

गांधी (Gandhi) जो सत्य अहिंसा के मुख्य समर्थक थे। राज्य रूपी संस्था का वर्तमान रूप उनके ऐसे सिद्धान्तों से मेल नहीं खाता था। इसलिए वे राज्य के विरूद्ध थे और एक दार्शनिक अराजकतावादी की तरह (Philosophical Anarchist) उन्होंने राज्य का खंडन किया था। राज्य एक 'आत्मा रहित यन्त्र' है इसकी शक्ति व्यक्ति की स्वतन्त्रता और उसके व्यक्तित्व को नष्ट कर देती है। गाँधी जी (Gandi) ने कहा था कि ''राज्य संगठित और सामूहिक रूप से हिंसा का प्रतिनिधित्व करता है। व्यक्ति की 'आत्मा' है, परन्तु राज्य 'आत्मा–रहित यन्त्र' है। यह हिंसा से कभी भी दूर नहीं किया जा सकता है, क्योंकि इसका अस्तित्व हिंसा पर आधारित है। ("The state represents violence in a concentrated and organized form. The individual has a soul but state is a 'soulless machine', it can never be weaned away from violence to which it owes its very existence.")

मनव विकास का विरोधी (Against man's Development)

गाँधी जी (Gandhiji) ने राज्य को मानव विकास का विरोधी बताया है। व्यक्ति में कुछ जन्मजात गुण होते हैं जिनका वह स्वतन्त्र वातावरण में विकास कर सकता है। राज्य की शक्ति मनुष्य की स्वतन्त्रता और उसकी व्यक्तित्व के लिए घातक है। गाँधी (Gandhi) ने कहा था कि, ''मैं राज्य की शक्ति में किसी भी तरह की वृद्धि को अधिकतम भय की दृष्टि से देखता हूँ। यद्यपि देखने में ऐसा प्रतीत होता है कि राज्य कानून द्वारा शोषण कम करने में जनहित कर रहा है। राज्य मनुष्य मात्र को सबसे अधिक हानि पहुँचाता है, क्योंकि इसके द्वारा व्यक्तिगत विशेषता का नाश होता है जो सभी प्रकार की उन्नति की जड़ है।''

राज्य एक साधन है, साध्य नहीं (State is a mean not an end)

गाँधी जी (Gandhiji) व्यक्ति और राज्य में व्यक्ति को साध्य और राज्य को साधन मानते थे और इस कारण उन्होंने राज्य के प्रभुत्व सिद्धान्त का खंडन किया है। वे हीगल (Heagel) या अन्य सर्वाधिकारवादियों की इस बात को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे कि व्यक्ति राज्य की प्रत्येक आज्ञा मानें। गाँधी जी (Gandhi) ने खुद कहा था, ''मेरे लिए राज्य साध्य नहीं है। यह अन्य साधनों में से एक ऐसा साधन है जो लोगों के जीवन को रहने लायक बनाता है, राज्य राजनीतिक शक्ति का एक साधन है, जो राष्ट्रीय प्रतिनिधियों द्वारा राष्ट्रीय जीवन को नियमित करने की एक योग्यता रखता है।'' ("To me Political Power is not an end but one of the means for enabling people to better their conditions in every department of life. Political Power means capacity to regulate national life through nation representatives.")

राज्य एक आवश्यक बुराई (State is a necessary evil)

सैद्धान्तिक रूप में गांधी जी राज्य के अस्तित्व के विपक्ष में थे, फिर भी वर्तमान परिस्थतियों में वे राज्य को समाप्त करने के पक्ष में नहीं थे। उनका विचार था कि वर्तमान समय मे मानव–जीवन इतना पूर्ण नहीं की वह स्व–संचालित होक सकें। इसलिये समाज में राज्य और उसकी राजकीय शक्ति की आवश्यकता है। राज्य को आवश्यक बुराई के रूप में स्वीकार करते हुए गांधी जी (Gandhiji) ने राज्य के प्रभाव और शक्ति को अधिक से अधिक कम करने का प्रयत्न किया है।

राज्य का कार्यक्षेत्र न्यूनतम (Minimum field of state activities)

गांधी जी (Gandhiji) व्यक्तिवादियों की तरह राज्य के कार्य–क्षेत्र को सीमित करने के पक्ष में थे। उनका विचार था

कि यदि राज्य की शक्तियों को सीमित न किया गया, उनके कार्य क्षेत्र पर यदि प्रतिबन्ध न लगाए गये तो वह व्यक्ति की स्वतन्त्रता को नष्ट कर देगा, जिससे व्यक्ति का विकास रूक जाएगा। इसलिए उन्होंने राज्य को कार्यक्षेत्र को सीमित करने का सुझाव दिया। राज्य का कार्यक्षेत्र न्यूनतम होना चाहिए। गांधी जी (Gandhiji) ने कहा था कि, ''स्वराज्य का अर्थ यह है कि ''व्यक्ति को सरकार के नियंत्रण से स्वतन्त्र होने का निरंतर प्रयत्न करना चाहिए, चाहे वह सरकार विदेशी हो और चाहे राष्ट्रीय।''

1.5.9 गाँधी जी का आदर्श राज्य (Ideal State of Gandhiji)

गाँधी जी (Gandhiji) वर्तमान समाज तथा राज्य की भूमिका से संतुष्ट नहीं थे। वे राज्य को एक अप्राकृतिक अनैतिक और हिंसक संस्था मानते थे, जो व्यक्ति के विकास और उन्नति में बाधक थी। इसलिए वे इस स्थान पर आदर्श राज्य या समाज अथवा अहिंसक राज्य की स्थापना करना चाहते थे। गाँधी जी ने जिस आदर्श राज्य अथवा समाज की कल्पना की थी, उसकी विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :–

अहिंसात्मक समाज (Non-Violent Society)

गाँधी जी (Gandhiji) अपने आदर्श राज्य को अहिंसात्मक समाज की स्थिति मानते हैं। जिसमें राज्य की शक्ति की आवश्यकता नहीं होगी। आदर्श राज्य (Ideal State) में प्रत्येक व्यक्ति स्वंय अपना शासक होगा। वह अपने ऊपर इस प्रकार से शासन करेगा। जिससे की वह अपने पड़ोसी के लिए बाधा न बने। आदर्श राज्य में राजनीति सत्ता नहीं होगी, फिर भी वे समाज में पुलिस, जले, सेना तथा न्यायालयों को बनाए राने के पक्ष में थे, क्योंकि समाज में कुछ असमाजिक तत्वों को दबाने व उन पर नियंत्रण करने के लिए इनकी आवश्यकता है।

शासन का रूप लोकतान्त्रिक (Democratic System)

गाँधी (Gandhi ji) के आदर्श राज्य में शासन पद्धति पूर्ण रूप से लोकतान्त्रिक होगी। जनता को अपने प्रतिनिधि चुनने का अधिकार होगा। आदर्श राज्य में बहुमत के द्वारा निर्णय लिये जाएंगे, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं होगा कि अल्पमत को दबाया जाएगा। गाँधी बहुमत को शासन करने की शक्ति देने के पक्ष में थे। परन्तु वे चाहते थे कि बहुमत अल्पसंख्यक पर अत्याचार न करे।

न्याय (Justice)

गाँधी जी (Gandhiji) राजनीतिक क्षेत्र में विकेन्द्रीकरण के पक्ष में थे। वे एक केन्द्रीकृत राज्य को व्यक्ति की स्वतन्त्रता का बहुत बड़ा शत्रु मानते थे। सत्ता के विकेन्द्रीकरण के लिए गाँधी जी का सुझाव था कि ग्राम पंचायतों का निर्वाचन प्रत्यक्ष रूप से हो, लेकिन गाँधी के ऊपर जो प्रशासनिक इकाइयाँ हो उनका चुनाव अप्रत्यक्ष ढंग से होना चाहिए। इस प्रकार देश के शासन की असली शक्ति गाँवों में केन्द्रित होगी।

धर्म निरपेक्ष समाज (Secular Society)

गाँधी (Gandhiji) के आदर्श समाज में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी इच्छानुसार किसी भी धर्म को मानने की स्वतन्त्रता होगी। धर्म का निजी मामला है, इसीलिए समाज की कोई भी संस्था व्यक्ति के धर्म में हस्तक्षेप नहीं करेगी। किसी भी धर्म को राज्य धर्म नहीं माना जाएगा। गाँधी जी का दृढ विश्वास था कि राज्य को कोई धर्म नहीं अपनाना चाहिए तथा राज्य की दृष्टि से सभी धर्म समान होने चाहिए।

आर्थिक विकेन्द्रीकरण (Economic Decentralisation)

गाँधी जी को आदर्श राज्य में आर्थिक विकेन्द्रीकरण से यह तात्पर्य था कि बड़े उद्योगों के स्थान पर गृह उद्योगों को अधिक से अधिक प्रोत्साहित किया जाएगा। गाँधी जी का विचा था कि ऐसा करने से बहुत सी अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएं और खींचातानी समाप्त हो सकती है। इसी कारण ही गाँधी जी ने खद्दर और दूसरी स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करने पर बल दिया था। उनका विचार था कि गृह उद्योगों द्वारा लोगों में आत्म विश्वास और काम करने का सामर्थ्य बढ़ेगा।

वर्ण प्रणाली (Varna System)

गाँधी जी (Gandhiji) जाति प्रणाली के बहुत विरूद्ध थे, परन्तु वर्ण प्रणाली पर उनका पूर्ण विश्वास था। गाँधी जी के विचार में वर्ण प्रणाली के कई गुण हैं। इस प्रणाली के अधीन प्रत्येक व्यक्ति अपने पूर्वजों के कामों को अपनाने का यत्न करेगा। वर्ण प्रणाली के अनुसार जब व्यक्तियों को अपने कार्य के अनुसार समान रूप से पारिश्रमिक मिलेगा और किसी को भी श्रेष्ठ या निम्न नहीं समझा जाएगा। व्यक्ति अपने–अपने पूर्वजों के कामों को ही ग्रहण करेंगे तथा इस तरह सामाजिक एकता को भी बल मिलेगा।

संरक्षण प्रणाली (Trusteeship System)

गाँधी जी ने आदर्श राज्य या आदर्श समाज में 'संरक्षक प्रणाली' लागू होगी। इसका तात्पर्य यह है कि धनी व्यक्तियों को ऐसे समाज में अधिक से अधिक धन कमाने और सम्पत्ति बनाने का अधिकार उन धनी व्यक्तियों को नहीं हो सकता। धनी व्यक्ति फालतू धन और सम्पत्ति के केवल संरक्षक होंगे और वह ऐसे धन का प्रयोग निजी कार्यों के लिए नहीं बल्कि सम्पूर्ण समाज की भलाई के लिए करेंगे।

शारीरिक कार्य आवश्यक (Manual Work Essential)

गाँधी जी (Gandhiji) की विचारधारा में हाथ के कार्य का बहुत ऊँचा स्थान था। उनका विचार था कि प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यकता के अनुसार हाथ का कार्य अवश्य करना चाहिए। हाथ से कार्य करने के सिद्धान्त को लागू करने से श्रेणियों का अन्तर भी समाप्त हो जाएगा और धनी और निर्धन का अन्तर भी समाप्त हो जायेगा और धनी और निर्धन व्यक्तियों में समानता और परस्पर सहयोग की भावना विकसित होगी।

गाँधी जी (Gandhiji) के आदर्श समाज में 'रोटी के लिए श्रम' (Bread Labour) का सिद्धान्त लागू होगा। इसका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक व्यकित को इतना काम करना पड़ेगा जितने काम के साथ वह अपने जीवन का निर्वाह कर सके। पुलिस और दूसरे अधिकारी लोगों के स्वामी नहीं, अपितु सेवक होंगे। गाँधीजी का आदर्श समाज अहिंसा पर आधारित अध्यात्मिक लोकतन्त्र होगा। इसमें कोई संदेह नहीं है कि गाँधी जी का आदर्श राज्य स्वर्गीय अवस्था की कल्पना करता है। परन्तु ऐसा राज्य वास्तव में समीव नहीं हो सकता है। यह कल्पना पर आधारित एक आदर्श राज्य है।

1.5.10 निष्कर्ष

राजनीति को सामाजिक प्रक्रियाओं के एक आयाम के रूप में समझा जाना चाहिए न कि महज राज्य और सरकारों संबंधी अध्ययन के रूप में। उदारवादी दृष्टिकोण से, राज्य महत प्रभुत्व सम्पन्न कानून–निर्मात्री शक्तियाँ, जबकि मार्क्सवाद ने राज्य की वर्ग प्रवृत्ति पर जोर दिया और दूसरी ओर, गाँधीवादी राज्य लोकतांत्रिक विकेन्द्रीयकरण के आदर्शों के साथ, एक नैतिक व साम्यवादी सर्वसम्मति पर आधारित है।

1.5.11 मुख्य शब्दावली

1. वर्ग–संघर्ष
2. सर्वहारा–वर्ग
3. शास्त्रीय
4. उदारवाद
5. विकेन्द्रित

1.5.12 अभ्यास हेतू प्रश्न

1. राज्य सम्बंधी उदारवादी धारणा की विस्तारपूर्वक व्याख्या करें।
   (Discuss in detail the Liberal views of the state.)
2. राज्य सम्बंधी मार्क्सवादी धारण की आलोचनात्मक व्याख्या करें।
   (Critically discuss the Marxian view of the state)
3. राज्य के स्वरूप सम्बंधी उदारवादी सिद्धान्त की व्याख्या करें।
   (Discuss the Liberal Theory of the Nature of State)
4. राज्य के स्वरूप सम्बंधी मार्क्सवादी सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या करें।
   (Critically discuss the Marxian theory of the Nature of Sate)
5. ''राज्य एक वर्ग संगठन है'' इस कथन को मुख्य रखते हुए राज्य के बारे में मार्क्सवादी दृष्टिकोण की व्याख्या करें।
   ("State is a class Organisation." In the light of this statement discuss Marxist view of state.)
6. गाँधी जी के आदर्श राज्य की व्याख्या करो।
   (Discuss Gandhi's Ideal state)
7. आधुनिक राज्य के गाँधीवादी दृष्टिकोण पर एक निबन्ध लिखिए।
   (Write an essay on the Gandhian perspective of the Modern State.)

1.5.13 संदर्भ सूची

- N.P. Barry. Introduction to Modem Political Theory, London, Macmillan, 1995.
- M. Carnoy, The State and Political Theory, Princeton NJ, Princeton University Press, 1984.
- G. Catlin, A Study of the Principles of Politics, London and New York, Oxford University Press, 1930.
- N.J. Hirschman and C.D. Stefano (eds.), Revisioning the Political Feminist Reconstruction of Tradition concepts in Western Political Theory, West View Press, Harper Collins, 1996.
- D. Heater, Citizenship: The Civic Ideal in World History, Political and Education, London,

Orient Longman, 1990.

- D. Held, Models of Democracy, Cambridge, Polity Press, 1987, G Mclellan, D. Held and S. Hall (eds.), The Idea of the Modem Slate, Milton Keynes, Open University Press, 1984.
- D. Miller, Social Justice, Oxford, The Clarendon Press, 1976.
- D. Miller, (ed.), Liberty, Oxford, Oxford University Press, 1991.
- D. Miller, Citizenship and National Indentities, Cambridge, Polity Press, 2000.
- S. Ramaswamy, Political Theory: Ideas and concepts, Delhi Macmillan, 2002.
- R.M. Titmuss, Essays on the Welfare State, London, George Allen and Unwin, 1956.
- F. Thakurdas. Essays on Political Theory, New Delhi, Gitanjali, 1982.
- J. Waldron(ed.), Theories of Rights, New Delhi, Oxford University Press 1984.
- S. Wasby, Political Science: The Discipline and its Dimensions, Calcutta, Scientific Book Agency, 1970.

1.6 प्रभुसत्ता (Sovereignty)

1.6.1 परिचय

गैटेल (Gettle)के शब्दों में, ''एक राज्य का दूसरे राज्य से, राज्य का अपने नागरिकों से तथा एक नागरिक का दूसरे नागरिक से क्या सम्बन्ध होता है, यह तभी समझा जा सकता है जब हम राज्य के उस तत्व पर विचार करें जो उसे अन्य समुदायों से पृथक करता है तथा जिसे हम सम्प्रभुता कहते हैं।'' ("The relation of state, to state, of a state to its citizens, of one citizen to another can be understood only after a further discussion of the characteristic which distinguished the state from all other organizations is to sovereignty.")

जन संख्या, निश्चित क्षेत्र, सरकार और प्रभुसत्ता – राज्य के इन तत्वों में 'प्रभुसत्ता' (Sovereignty) सबसे अधिक महत्वपूर्ण तत्व है जिसके आधार पर राज्य को अन्य सभी समुदायों से अलग किया जा सकता है। राज्य के लिए ''प्रभुसत्ता'' का वही महत्व है जो व्यक्ति के जीवन के लिए प्राणों का होता है। वस्तुतः प्रभुसत्ता के बिना राज्य के अस्तित्व की कल्पना ही नहीं की जा सकती है।

1.6.2 उद्देश्य

- संप्रभुता की अवधारणा को समझ सके और उसकी प्रकृति व लक्षणों को जान सके।
- इस सिद्धान्त की उत्पत्ति को तलाश कर सकें और इसकी स्थापना और विविधताओं को स्पष्ट कर सकें।
- सम्प्रभुता की अवधारणा के विरूद्ध अभिलक्षित तीखी आलोचनाओं का विवेचनात्मक रूप से मूल्यांकन कर सकें।
- आज के विश्व में इस अवधारणा का औचित्य जान सकें।

1.6.3 प्रभुसत्ता का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Sovereignty)

प्रभुसत्ता का अंग्रेजी अनुवाद 'सावरेन्टी' (Sovereignty) लेटिन शब्द 'सुपर' (Super) और 'एनस' (Anus) से लिया गया है। जिसका अर्थ 'सर्वोच्च' (Supreme) शक्ति होता है। प्रभुसत्ता के इसी अर्थ को वर्त्तमान में भी स्वीकार किया गया है। राजनीतिक विज्ञान के विभिन्न विद्वानों ने प्रभुसत्ता के सम्बन्ध में विभिन्न विचार व्यक्त किये हैं। ब्राइस के शब्दों में कहा जा सकता है कि ''प्रभुसत्ता विवादास्पद और उलझे हुए प्रश्नों में से एक हैं।'' प्रभुसत्ता की परिभाषा विभिन्न विद्वानों द्वारा निम्न प्रकार से दी गई है :–

1. जीन बोंदा(Jean Bodin) के अनुसार, ''प्रभुसत्ता नागरिकों और प्रजाजनों के ऊपर राज्य की वह सर्वोच्च शक्ति है, जिस पर कानून का कोई अंकुश न हो। ("Sovereignty is the supreme power of the state over citizens and subjects unrestrained by law.")

2 डिग्विट (Duguit) के अनुसार ''प्रभुसत्ता राज्य को आदेश देने की शक्ति होती है; राज्य के रूप में संगठित राष्ट्र की यह इच्छा होती है, यह वह अधिकार है, जिसके आधार पर राज्य के निश्चित क्षेत्र के सभी व्यक्तियों को असीमित आदेश दिये जा सकते हैं।'' ("Sovereignty is the commanding power of the state, it is the will of the nations organized in the state, is the right to give unconditional orders to all individuals in the territory of the state.")

3. ग्रोशियस (Grotious) ने कहा कि ''प्रभसत्ता उसके व्यक्ति में निहित सर्वोच्च राजनीतिक शक्ति है जिसके कृत्य अन्य किसी पर आश्रित न हो और जिसकी आज्ञा का उल्लंघन न किया जा सकता हो।'' ("Sovereignty is the superme power vester in him, whose acts are not subject to any other and whose will cannot be over ridden.")

4. बर्गेस (Bugess) के अनुसार ''यह व्यक्तिगत रूप से प्रजाजन व उनके समुदायों के ऊपर प्राप्त राज्य की मौलिक निरपेक्ष व असीमित शक्ति है।'' ("Sovereignty is the original, absolute, and unlimited power over the individual subjects and over all associations of subjects.")

विलोबी (Willoughby) के अनुसार, ''प्रभुसत्ता राज्य की सर्वोपरि इच्छा होती है।'' ("Sovereignty is the supreme will of the states.")

पोलोक (Pollock) के अनुसार, ''संप्रभुता वह शक्ति है जो न तो अस्थायी होती है, न किसी अन्य द्वारा प्रदान की हुई होती है, न किन्हीं ऐसे विशिष्ट नियमों द्वारा बंधी हुई होती है। जिन्हें यह स्वयं न बदल सके और न जो पृथ्वी पर अन्य किसी के प्रति उत्तरदायी होती है।'' ("Sovereignty is that power which is neither temporary delegated, not subject to particular rules, which it cannot alter, not answerlable to any other power on earth.")

यद्यपि इन परिभाषाओं में भिन्न–भिन्न शब्दों का प्रयोग किया गया है तथापि इन सभी विद्वानों का आशय यही है कि प्रभुसत्ता का तात्पर्य एक निश्चित क्षेत्र में राज्य की सर्वोपरि शक्ति से है। प्रभुसत्ता के दो पक्ष होते हैं (1) आन्तरिक प्रभुसत्ता तथा (2) बाहरी प्रभुसत्ता। प्रभुसत्ता के इन दोनों पक्षों में से प्रत्येक का वर्णन इस प्रकार है :–

आन्तरिक प्रभुसत्ता (Internal Sovereignty)

आन्तरिक प्रभुसत्ता का तात्पर्य है कि राज्य व्यक्तियों या व्यक्ति समुदायों से उच्चतर होता है। वह अपने निश्चित क्षेत्र के अन्तर्गत रहने वाले सभी व्यक्तियों और निश्चित क्षेत्र में स्थित सभी समुदायों और संगठनों को किसी भी प्रकार की आज्ञा दे सकता है तथा शक्ति के आधार पर इन आज्ञाओं को मनवा सकता है कि ''प्रभुसत्ता राज्य के सम्पूर्ण क्षेत्र में विस्तृत होती है और एक राज्य के अन्तर्गत स्थित सभी व्यक्ति और समुदाय इसके अधीन होते हैं।''

बाहरी प्रभुसत्ता (External Sovereignty)

बाहरी प्रभुसत्ता का तात्पर्य यह है कि राज्य किसी भी बाहरी सत्ता के प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष नियन्त्रण से स्वतन्त्र होगा। एक राज्य को इस बात की पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त होती है कि वह विदेशों में जैसे चाहे वैसे संबंध स्थापिक करे। लॉस्की (Laski) ने प्रभुसत्ता के इस बाहरी पक्ष की ओर संकेत करते हुए कहा है कि ''आधुनिक राज्य प्रभुत्व सम्पन्न राज्य होता है। अतः वह अन्य राज्य के सम्बन्धों के विषय में स्वतन्त्र होता है। वह उसके सम्बन्ध में अपनी इच्छा को किसी बाहरी शक्ति से प्रभावित हुए बिना ही व्यक्त कर सकता है।'' (The modern state is a sovereign state. It is therefore, independent in the face of other communities. It may infuse its will towards them with substance which need not be affected by the will of any external power.") प्रभुसत्ता राज्य की वह सर्वोच्च शक्ति है जिसके द्वारा राज्य के निश्चित क्षेत्र के अन्तर्गत स्थित सभी व्यक्तियों और समुदायों पर पूर्ण नियंत्रण रखा जाता है और जिसके आधार पर एक राज्य अपने ही समान दूसरे राज्य के साथ अपनी इच्छानुसार संबंध स्थापित कर सकता है।

1.6.4 प्रभुसत्ता के लक्षण अथवा विशेषताएँ (Chatacteristics of Sovereignty)

उपर्युक्त धारणा के आधार पर प्रभुसत्ता के निम्नलिखित लक्षण है :–

निरंकुशता (Absolutness)

प्रभुसत्ता का अर्थ सर्वोच्च शक्ति से है और जैसा कि प्रभुसत्ता के इस अर्थ से ही स्पष्ट है, यह सर्वोच्च शक्ति निंकुश होती है। प्रभुसत्ता आन्तरिक और बाहरी दोनों क्षेत्रों में निरंकुश एवं सर्वोच्च होती है। आन्तरिक क्षेत्र में प्रभुसत्ता सभी व्यक्तियों और समुदायों पर नियन्त्रण रखती है; शक्ति के आधार पर उनसे अपनी आज्ञाओं को मनवा सकती है एवं किसी के द्वारा भी राज्य की आज्ञाओं को चुनौती नहीं दी जा सकती है। इसी प्रकार बाहरी क्षेत्र में एक राज्य दूसरे राज्यों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने के सम्बन्ध में पूर्णतया स्वतन्त्र होता है। ऑस्टिन (Austing) के शब्दों में कहा जा सकता है कि ''प्रभु अन्य सभी आदेश पालन कराने की स्थिति में होता है, किन्तु स्वयं किसी के आदेश पालन का अभयस्त नहीं होता।''

मौलिकता (Originality)

मौलिकता का अर्थ है कि राज्य की प्रभुसत्ता मौलिक है, किसी अन्य सत्ता द्वारा प्रदत (Delegated) नहीं है। प्रभुसत्ता की परिभाषा के अनुसार प्रभुसत्ता से उच्च किसी अन्य सत्ता का अस्तित्व असम्भव है।

सर्वव्यापकता (All Comprehensiveness)

प्रभुसत्ता की सर्वव्यापकता का तात्पर्य है कि राज्य के अन्तर्गत स्थिति सभी व्यक्तियों और समुदायों पर राज्य की प्रभुत्व शक्ति का नियन्त्रण रहता है औ इनमें से कोई भी प्रभु शक्ति का नियंन्त्रण रहता है और इनमें से कोई भी प्रभु शक्ति से मुक्त होने का दावा नहीं कर सकता। सर्वव्यापकता को केवल एक अपवाद कहा जा सकता है 'राज्योतर प्रभुसत्ता एक सिद्धान्त' (Principle of Extraterritarial Sovereignty) इस सिद्धान्त के अनुसा एक देश के अन्तर्गत स्थित राजदूतावास (Embassy) उस देश की सम्पत्ति समझा जाता है जिस देश का वह प्रतिनिधित्व करता है और दूतावास के क्षेत्र में उसी देश के कानून लागू होते हैं, जिस देश का वह प्रतिनिधित्व करता है।

स्थायित्व (Permanency)

अनेक बार प्रभुसत्ता को एक सरकार विशेष का पर्यायवाची समझ लिया जाता है, लेकिन यह समझना गलत है। वस्तुतः प्रभुसत्ता स्थायी होती है और प्रभुसत्ता का अन्त करना राज्य को ही समाप्त करना हैं। ब्रिटिश संविधान में 'राजा मृत है राजा चिरायु हो' (King is dead, long live the king) की जो कहावत प्रचलित है; वह सरकार और प्रभुसत्ता के अन्तर को स्पष्ट करते हुए यही बताती है कि प्रभुसत्ता ऐसी संस्था के रूप में होती है जो कभी भी समाप्त नहीं होती। न केवल सरकारों के परिवर्तन, वरन् एक राज्य द्वारा दूसरे राज्य पर विजय प्राप्त कर लेने से भी प्रभुसत्ता नष्ट नहीं होती। न केवल सरकारों के परिवर्तन, वरन् एक राज्य द्वारा दूसरे राज्य पर विजय प्राप्त कर लेने से भी प्रभुसत्ता नष्ट नहीं होती, वरन् विजित राज्य की प्रभुत्व शक्ति विजेता राज्य के हाथों में चली जाती है। गार्नर (Garner) ने कहा कि, ''स्थायित्व से आशय यह है कि जब तक राज्य कायम रहता है तब तक प्रभुसत्ता कायम रहती है। प्रभुत्वधारी की मृत्यु अथवा अल्पकालीन पदरूच्युति तथा राज्य के पुनः संगठन के कारण प्रभुसत्ता का नाश नहीं होता है।''

अपृथक्करणीयता (Inalienability)

प्रभुसत्ता राज्य से अपृथक्करणीय होती है अर्थात् राज्य स्वयं को नष्ट किये बिना प्रभुसत्ता का त्याग नहीं कर सकता। प्रभुसत्ता राज्य के व्यक्तित्व का मूल तत्व है और उसे अलग करना आत्महत्या के समान है। गार्नर (Garner) ने कहा

है कि ''प्रभुसत्ता मनुष्य का व्यक्तित्व और उसी आत्मा है। जिस प्रकार मनुष्य का व्यक्तित्व अदेय है और वह किसी दूसरे को दे नहीं सकता, उसी प्रकार राज्य की प्रभुसत्ता भी किसी अन्य को नहीं दी जा सकती है।'' लाइबर (Lieber) ने सुन्दर ढंग से इस प्रकार वर्णन किया है कि ''जिस प्रकार निज को नष्ट किये बिना मनुष्य अपने जीवन तथा व्यक्तित्व को अथवा वृक्ष अपने फलने–फूलने के स्वभाव को पृथक नहीं कर सकता, उसी प्रकार प्रभुसत्ता को राज्य से पृथक नहीं किया जा सकता है।'' ("Soverignty can no more be alienated than a tree can alienate its right to sprout or man can transfer his life and personality without self-destruction.")

अनन्यता (Exclusiveness)

इसका अर्थ यह है कि एक राज्य में केवल एक ही प्रभुशक्ति हो सकती हे, जो वैध रूप से जनता को आज्ञा पालन करने का आदेश देती है। एक राज्य के अन्दर एक से अधिक प्रभुशक्तियों का अस्तित्व मान लेना 'राज्य के भीतर राज्य' की मान्यता को स्वीकार कर लेना और राज्य की एकता को भंग करना है।

अविभाज्यता (Indivisibility)

प्रभुसत्ता का एक अन्य प्रमुख लक्षण उसकी अविभाज्यता है। प्रभुसत्ता पूर्ण है, उसे विभाजित करने का अर्थ उसे नष्ट करना अथवा एक से अधिक राज्यों की रचना करना। गैटिल (Gettel) के शब्दों में ''विभाजित प्रभुसत्ता अपने आप में एक विरोधाभास है।'' ("Divided sovereignty is a contradiction in term.") इस सम्बन्ध में कालहन (Calhoun) ने लिखा है ''प्रभुसत्ता एक पूर्ण वस्तु है। जिस प्रकार हम एक अर्द्ध–वर्ग (Half-Source) अथवा एक अर्द्ध–त्रिभुज (Half Tringle) की कल्पना नहीं कर सकते, उसी प्रकार आधी अथवा तिहाई प्रभुसत्ता का विभाजन केवल एक 'धोखा' है।'' ("Soverignty is an entire thing. To divide is to destroy. It is the supreme power of the state and we might just as well speak of half a square or half a triangle, as half a sovereignty.") प्रभुसत्ता का अर्थ है राज्य की सर्वश्रेष्ठ सत्ता और एक ही समय पर एक राज्य में दो सर्वश्रेष्ठ सत्ताएँ निवास नहीं कर सकती। प्रभुसत्ता की अविभाज्यता के विचार से अनेक विचारक सहमत नहीं है। बहुलवादी (Pluralist) प्रभुसत्ता को (Sovereigntly) राज्य और अन्य समुदायों में विभाजित मानते हैं। इसके अतिरिक्त लावेल, ब्राइस फ्रीमैन आदि लेखकों का विचार है कि संघ राज्यों में प्रभुसत्ता विभाजित होती है। फ्रीमैन (Freeman) तो यहाँ तक कहता है कि ''संघात्मक आदर्श की पूर्णता के लिए प्रभुत्व शक्ति का पूर्ण विभाजन अनिवार्य है।'' ("The complete division of sovereignty, we may look upon as essential to the absolute perfection of the feederal ideas.") लेकिन ब्राइस, लावेल, फ्रीमैन आदि विद्वानों का दृष्टिकोण सही नहीं है। संघ राज्य में प्रभुसत्ता अविभाज्य ही होती है। यह प्रभुसत्ता संविधान में निहित होती है और व्यवहार में इसका प्रयोग संविधान में संशोधन करने वाली शक्ति करती है।

निष्कर्ष (Conclusion)

प्रभुसत्ता के उपर्युक्त सभी लक्षण एक–दूसरे से सम्बन्धित है। संक्षेप में प्रभुसत्ता राज्य की सर्वोच्च शक्ति है जिसके बिना किसी भी राज्य की कल्पना नहीं की जा सकती।

1.6.5 प्रभुसत्ता की सीमाएँ (Limitations of Sovereignty)

प्रभुसत्ता की मुख्य विशेषता यह है कि यह सर्वोच्च, सम्पूर्ण, निरंकुश तथा सीमित है। लॉस्की (Laski) के मतानुसार ''इसकी (राज्य की) इच्छा पर किसी प्रकार का कोई कानूनी प्रतिबन्ध नहीं है।'' ("It's (States) will is subject to no legal limiation of any kind.")

प्रभुसत्ता आन्तरिक तथा बाह्य रूप से सर्वोच्च होती है। यदि इस पर किसी दूसरी शक्ति का प्रतिबन्ध हो जाता है तो वह प्रभुसत्ता स्वयं प्रभुसत्ता बन जाती है। गैटेल (Gettle) के मतानुसार, ''यदि प्रभुसत्ता निरंकुश नहीं हो तो राज्य नहीं बनता।'' ("Is sovereighty not absolute, no state exists.") परन्तु यह प्रभुसत्ता का सैद्धान्तिक (Theoretical) पहलू है। व्यवहारिक रूप में प्रभुसत्ता निम्नलिखित प्रतिबन्ध है :–

1. प्राकृतिक नियम (Natural Law)
2. नैतिक नियम (Moral Principles)
3. रीति रिवाज (Custom and Traditions)
4. धर्म (Religion)
5. अन्तर्राष्ट्रीय कानून (International Law)
6. जनमत (Public Opinion)
7. मानवीय सहनशीलता (Human Endurance)
8. राजनैतिक प्रणाली का वातावरण (Environment of Political System) तथा राज्य का संविधान (Constitution of the State)

व्यावहारिक रूप में प्रभुसत्ता पर सीमाओं का वर्णन, गिल क्राइस्ट (Gill Christ) तथा गार्नर (Garner) इत्यादि विद्वानों ने इस प्रकार किया है :–

1. गिलक्राइस्ट के मतानुसार (Gilchrist) ''प्रभुसत्ता मानवीय सहनशीलता द्वारा सीमित है। प्रभुसत्ताशाली शासन के कार्य धर्म शिक्षा चरित्र और उसके वातावरण द्वारा जरूर प्रभावित होते हैं। ("Sovereignty power is limited by human endurance religion, education, character and environment of the society must mould his action.")
2. गार्नर (Garner) ने कहा है कि ''प्रकृति के कानून, नैतिक नियम, ईश्वरीय कानून मानवता और बुद्धि के आदेश, लोकमत का भय और राज्य की प्रभुसत्ता सम्बन्धी अन्य कथित पाबन्दियों का कोई भी कानूनी प्रभाव नहीं है। इनका प्रभाव केवल उस सीमा तक है जहाँ तक राज्य उन्हें मान्यता देता है और व्यवहार में लागू करता है।''

1.6.6 प्रभुसत्ता के रूप (Kinds of Sovereignty)

प्रभुसत्ता के रूपों की व्याख्या निम्न प्रकार की जा सकती है :–

औपचारिक तथा वास्तविक प्रभुसत्ता (Nominal or titular and Real Sovereignty)

औपचारिक या नाममात्र की प्रभुसत्ता का तात्पर्य एक व्यक्ति या ऐसी इकाई से है, जिसके पास सैद्धान्तिक दृष्टि से सम्पूर्ण शक्ति निहित हो परन्तु व्यवहार में इन शक्तियों का प्रयोग उनके नाम पर कोई अन्य व्यक्ति ही करें। इंग्लैण्ड का सम्राट इस प्रकार औपचारिक प्रभु का आदर्श उदाहरण है। सैद्धान्तिक दृष्टि से इंग्लैण्ड में सम्राट ही प्रभु है किन्तु वास्तविक प्रभु पार्लियामेंट और मन्त्रीमण्डल है जो व्यवहार में सम्राट की प्रभसत्ता उपयोग करता है। इसी प्रकार भारत

में भी राष्ट्रपति को औपचारिक सम्प्रभु और संसद एवं मन्त्रिमण्डल को वास्तविक प्रभु कहा जा सकता है।

वैधानिक प्रभुसत्ता (Legal Sovereignty)

एक राज्य के अन्तर्गत कानूनों का निर्माण करने और उनका पालन कराने की सर्वोच्च शक्ति जिसके पास होती है उसे 'वैधानिक प्रभु'' कहते हैं। यह वह प्रभु है जिसे न्यायालय स्वीकार करता है। वैधानिक दृष्टि से इस सर्वोच्च शक्ति पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं होता। गार्नर (Garner) ने कहा है कि ''कानूनी प्रभु वह निश्चित सत्ता है जो राज्य के उच्चतम आदर्शों को कानून के रूप में प्रकट कर सकें। वह सत्ता जो ईश्वरीय नियमों या नैतिकता के सिद्धान्तों तथा जनमत की उपेक्षा कर सके।'' इसी प्रकार डायसी (Dicey) ने लिखा है कि ''वैध प्रभुसत्ता कानून बनाने वाली वह शक्ति है जो अन्य किसी कानून या विधि से मर्यादित नहीं होती है।'' इंग्लैण्ड में संसद सहित सम्राट (King in Parliament) को इसी प्रकार का एक वैधानिक प्रभु कहा जा सकता है।

वैधानिक (कानूनी) प्रभुसत्ता की निम्नलिखित विशेषतायें (Characteristics) है।

(i) निश्चित (Determinate)

यह निश्चित होती है और न्यायालय इसे स्वीकार करते हैं।

(ii) निहित (Human Factor)

यह किसी एक 'व्यक्ति' या 'व्यक्ति समूह' में निहित हो सकती है।

(iii) विधि द्वारा मान्य (Legitimate)

यह निश्चित रूप से संगठित, स्पष्ट और विधि द्वारा मान्य होती है।

(iv) कानूनी प्रभुसत्ता (Legal Sovereignty)

व्यक्तियों को सभी अधिकार कानूनी प्रभुसत्ता से ही प्राप्त होते हें। अतः स्वाभाविक रूप से व्यक्ति को इस प्रभुसत्ता के विरूद्ध कोई अधिकार प्राप्त नहीं हो सकते।

(v) असीमीत और सर्वोच्च (Unlimited)

यह असीमित और सर्वोच्च होती है।

राजनीतिक प्रभुसत्ता (Political Sovereignty)

स्विट्जरलैंड़ जैसे प्रत्यक्ष प्रजातन्त्रीय शासन–व्यवस्था वाले देशों में तो वैधानिक प्रभुसत्ता और राजनीतिक प्रभुसत्ता में कोई अन्तर नहीं होता, लेकिन जिस प्रकार का प्रतिनिध्यात्मक प्रजातन्त्र वर्तमान समय में विश्व के अधिकांश राज्यों में प्रचलित है, उसके अन्तर्गत वैधानिक प्रभु और राजनीतिक प्रभु अलग–अलग इकाइयाँ होती हैं।

कानूनी दृष्टि से तो इंग्लैण्ड में पार्लियामेंट (Parliament) प्रभु है किन्तु वास्तविक रूप में पार्लियामेंट की सत्ता पर अनेक प्रतिबंध हैं। जनता पार्लियामेंट के सदस्यों को निर्वाचित करती है और उन पर नियन्त्रण रखती है। कानूनी प्रभु की सत्ता पर नियन्त्रण रखने वाली इस शक्ति को ही राजनीतिक प्रभु कहा जाता है। डायसी के (Dicey) के शब्दों में ''जिस प्रभु को लोग वकील मानते हैं, उनके पीछे एक दूसरा प्रभु रहता है। इस प्रभु के सामने वैधानिक प्रभु को सिर झुकाना ही पड़ता है। जिसकी इच्छा को अन्तिम रूप में राज्य के नागरिक मानते हैं वहीं राजनीतिक सम्प्रभु है।'' ("Behind the soveregin, which of lower recognises, there is another sovereign to whom the legal soveregin must bow.")

लेकिन यह राजनीतिक प्रभुसत्ता कानून द्वारा ज्ञात नहीं होती, यह तो असंगठित और अनिश्चित होती है। गिलक्राइस्ट (Gilchrist) के शब्दों में कहा जा सकता है कि ''राजनीतिक प्रभु एक राज्य के अन्तर्गत उन सभी प्रभावों का योग होता है जो कानूनी प्रभु के पीछे निहित रहते हैं। ("The sum total of influence in a state, which lie behind the law.")

वैध तथा यथार्थ प्रभुसत्ता (De-Jure and De-Facto Sovereignty)

एक देश के संविधान द्वारा जिस व्यक्ति या समुदाय को शासन करने का अधिकार प्रदान किया जाता है, उसे वैध प्रभु कहते हैं और एक देश के अन्तर्गत व्यवहार में अथवा वास्तव में जिस व्यक्ति के द्वारा शासन किया जाता है, दूसरे शब्दों में, जनता से जो व्यक्ति अपनी आज्ञाओं का पालन कराता है, उसे यथार्थ प्रभु कहते हैं। यथार्थ प्रभुसत्ता की परिभाषा करते हुए ब्राइस (Brayce) ने कहा है, ''यथार्थ प्रभुसत्ता उस व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के उस समूह में पाई जाती है, जो कानून और गैर–कानूनन अपनी इच्छा को राज्य में कार्यान्वित कर सकता है।''

जनप्रभुसत्ता (Popular Sovereignty)

जन प्रभुसत्ता सिद्धान्त की घोषणा रूसों (Rousseau) के द्वारा की गयी। रूसों ने इस विचार का प्रतिपादन किया कि जनता की वाणी ही 'ईश्वर की वाणी है।' राज्य की प्रभुत्व शक्ति जनता में निहित होती है और सरकार शासन व कानून – निर्माण की शक्ति जनता से ही प्राप्त करती है। अमेरीकी (American) और फ्रांसीसी क्रान्ति (French Revolution) का आधार जनप्रभुसत्ता का यही विचार था और वर्तमान समय में यह विचार सबसे अधिक लोकप्रिय एवं प्रेरणादायक राजनीतिक विचार है। लॉर्ड ब्राइस (Lord Bryce) के शब्दों में, ''लोकप्रिय प्रभुसत्ता लोकतन्त्र का आधार तथा प्रतीक बन गयी है।'' ("Popular Sovereignty has become the basis and watch word of democracy.")

प्रभुसत्ता की विशेषताओं तथा उसके रूपों के अध्ययन के पश्चात् जान ऑस्टिन के प्रभुसत्ता सम्बन्धी विचारों का गहन अध्ययन करेंगे।

1.6.7 जॉन आस्टिन का एकलवादी प्रभुसत्ता का सिद्धान्त (John Austin's Monoestic Theory of Sovereignty)

जॉन ऑस्टिन (John Austin) इंग्लैण्ड का विधिशास्त्री (Turist) था, जिसने 1832 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'विधानशास्त्री पर व्याख्यान (Lectures on Jurisprudence) में प्रभुसत्ता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। ऑस्टिन हॉब्स और वैंथम (Bentham) के विचारों से प्रभावित था। बैंथम के समान ही आस्टिन का उद्देश्य भी कानून और परम्परा के बीच भेद करना और परम्परा पर कानून की श्रेष्ठता स्थापित करना था। कानून के संबंध में श्रेष्ठता स्थापित करना था। कानून के संबंध में ऑस्टिन का विचार था कि ''उच्चतर द्वारा निम्नतर को दिया गया आदेश ही कानून होता है।'' ("Law is a command given by a superior to an inferior.") और अपने इसी विचार के आधार पर ऑस्टिन (Austin) ने प्रभुसत्ता की धारणा का प्रतिपादन किया। जो इस प्रकार है कि ''यदि कोई निश्चित उच्च सत्ताधारी व्यक्ति, जो स्वयं किसी उच्च सत्ताधारी की आज्ञापालन का अभ्यस्त नहीं जो किसी समाज के अधिकांश भाग में अपने आदेशों का पालन कराता है, तो उस समाज में वह उच्च सत्ताधारी व्यक्ति प्रभुत्व शक्ति सम्पन्न होता है तथा वह समाज (उस सत्ताधिकारी सहित) एक राजनीतिक और स्वतन्त्र समाज होता है।'' ("If a determinate human sperior, nation the habit of obedience of a like superior, receives habitual obeance from the bulk of a given societ, that determinate superior is the sovereign in and the society (including the sovereign), a society political and independent.")

1.6.8 एकलवादी प्रभुसत्ता सिद्धान्त की विशेषताएँ (Characteristics of Austins Monistic Theory)

ऑस्टिन के एकलवादी सिद्धान्त की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैंः–

निश्चित मनुष्य (Determinate Human Superior)

प्रत्येक राज्य में प्रभु 'निश्चित' होना चाहिए जो स्पष्ट रूप से दिखाई दे, जिसे लोग सब अधिकारों के स्रोत के रूप में स्वीकार कर सकें। इसलिए प्रभुसत्ता ऐसी भावनाओं के प्रतीक मे नहीं हो सकती जिन्हें 'सामान्य इच्छा' अथवा 'प्राकृतिक कानून' कहते हैं, न ही यह सम्पूर्ण जनता, निर्वाचक–मंडल या लोकमत में होती है। दूसरा, प्रभु 'मनुष्य' होना चाहिए अर्थात् प्रभुसत्ता न तो ईश्वर और न देवताओं में निवास करती है और न ईश्वरीय नियम का इसके साथ कोई सम्बन्ध है। गार्नर (Garner) के शब्दों में, ''वह मानव–श्रेष्ठ न तो रूसों द्वारा दिखलाई गई सामान्य इच्छा हो सकती है न ही जनता को सकती है, न ही नैतिक भावना, सहज विवेक, दैवी इच्छा या ऐसी कोई भावना हो सकती है, परन्तु यह अवश्य ही एक निश्चित व्यक्ति या शक्ति है जो कानून द्वारा बन्धित नहीं।'' ("This superior can not be general will as Roussau taught, nor the people in the mass, nor the electorate, nor some abstraction like 'Public opinion', 'moral sentiment', 'comman reason', the 'will of God', and the like, but it must be some 'determinate', 'person' or authority which it itself subject of no legal restraint.")

असीमित और अपरिमित (Absolutate and Unlimited)

प्रभुसत्ताधारी की शक्ति असीमित और अपरिमित होती है। कोई उच्चतर अधिकारी उससे अपनी आज्ञाओं का पालन नहीं करा सकता।

आज्ञाकारिता (Obedience) स्थिर (Permanent)

प्रभुसत्ताधारी के प्रति आज्ञाकारिता आदत का विषय होती है यदा–कदा की बात नहीं। ऑस्टिन (Austin) का विचार है कि निश्चित प्रभु के प्रति आज्ञाकारित 'स्थिर' होनी चाहिए।

आदेश कानून है (Law is a command)

प्रभु शक्ति का आदेश कानून है और आदेश की अवहेलना करने वाला दंड का भागी होता है।

अखंडित (Indivisible)

सर्वोच्च प्रभु की शक्ति 'अखंडित' है। यह एक ही इकाई है और व्यक्तियों अथवा संघों में इसका विभाजन नहीं हो सकता।

1.6.9 आलोचना (Criticism)

ऑस्टिन द्वारा किये गये विश्लेषण के अनुसार सर्वोच्च शक्ति निश्चयात्मक, स्वेच्छाचारी, असीमित, अविभाज्य, सर्वव्यापक और स्थायी है। किन्तु ऑस्टिन (Austin) एक वकील था और उसने प्रभुसत्ता के सिद्धान्त की व्याख्या केवल वैधानिक (Legal) दृष्टिकोण के आधार पर ही की है। सर हेनरी मेन (Sir Henry Maine), ब्राइस (Bryce), ए०आर० लार्ड (A.R. Lord), ब्लंन्शली (Bluntschli), जेम्स स्टीफोन (James Stephen) आदि विद्वानों ने इस सिद्धान्त की कटु ओलाचना की है। ऑस्टिन के सिद्धान्त की यें ओलाचनाएँ निम्नलिखित आधारों पर हुई हैः–

प्रभु को खोज पाना कठिन (Discovery of Sovereign Difficult)

ऑस्टिन (Austin) के द्वारा जिस प्रकार के 'निश्चित प्रभु' की व्याख्या की गई है, व्यवहार में उसे खोज पाना अत्यन्त कठिन है। सर हेनरी मेन (Sir Henry Maine) ने अपनी पुस्तक (Early Institutions) में लिखा है कि ''इतिहास में इस प्रकार के निश्चित जनश्रेष्ठ के उदाहरण नहीं मिलते हैं।'' ऐसी स्थिति में जॉन चिपमैन ग्रे (John Chipman Gray) के शब्दों में कहा जा सकता है कि ''समाज के वास्तविक शासकों को खोजा नहीं जा सकता है।'' ("The real rulers of society are undiscoverable.")

लोक प्रभुता की अवहेलना (Popular Sovereighy-Ignored)

इस सिद्धान्त का यह प्रतिपादत कि प्रभु कोई निश्चित शक्ति होती है, लोक प्रभुता की इस मान्यता के विपरीत है कि प्रभुत्व शक्ति जनता में निहित होती है तथा 'लोकमत या जनता की इच्छा ही राज्य में सर्वोपरि है।'

कानून आदेश मात्र नहीं (Law-not only command of Superior)

ऑस्टिन (Austin) के सिद्धान्त का यह प्रतिपादन कि प्रभु के आदेश ही कानून होते हैं, गलत हैं। वस्तुतः प्रभुसत्ता ही कानून का एक मात्र, स्रोत नहीं है। एक स्थान पर कौटिल्य (Kautila) ने कहा है कि , ''धर्म औचित्य, न्याय पारस्परिक व्यवहार की शर्तें, परम्परागत नियम और प्रथाएँ तथा राजा के आदेश कानून के स्त्रोत होते हैं।'' आधुनिक विचारधारा के अनुसार भी परम्परागत प्रथाओं न्याय संबंधी निर्णयों, वैधानिक क्रियाओं पर आधारित राजकीय विधानमण्डल को कानून का स्त्रोत माना जाता है। कोई सत्ताधारी प्रभु चाहे वह कितना भी शक्तिशाली क्यों न हो, मनमाने कानून नहीं बना सकता। इस सम्बन्ध में डिग्विट (Duguit) ने तो यहाँ तक लिखा है कि ''राज्य कानून का निर्माण नहीं करता, वरन् कानून ही राज्य की स्थापना करते हैं। कानून केवल सामाजिक आवश्यकता का प्रकाशन होता है।'' ("It is not the state which creates law, but it is the law, which creates the state, laws are merely the expressions of social necessity.")

अविभाज्य नहीं (Non Indivisible)

ऑस्टिन (Austin) प्रभुसत्ता की अविभाज्यता का प्रतिपादन करता है, लेकिन व्यवहारिक दृष्टिकोण से प्रभुसत्ता की अविभाज्यता के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया जा सकता। वर्तमान समय में संघात्मक राज्यों के अन्तर्गत तो प्रभुसत्ता आवश्यक रूप से विभाजित होती है।

शक्ति को अत्यधिक महत्व (Excessive Importance of Force)

इस सिद्धान्त के प्रतिपादन में शक्ति को अत्यधिक महत्व प्रदान किया गया है। ऑस्टिन (Austin) की धारणा से प्रतीत होता है कि उच्च सत्ता अपने सिद्धान्तों का पालन 'शक्ति' के आधार पर ही करवाती है, परन्तु वास्तविकता यह नहीं है। अधिकांश जनता कानूनों का पालन दंड के भय के कारण नहीं वरन् इस कारण करती है कि कानून जनता की इच्छा को प्रकट करता है और उनके पालन में जनता का ही कल्याण निहित होता है। हर्नश (Hearnshaw) ने कहा है ''ऑस्टिन के दर्शन में हवलदारी की गंध आती है।''

असीमित नहीं (Not Unlimited)

ऑस्टिन (Austin) द्वारा प्रभुसत्ता के जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है उसके अनुसार प्रभुसत्ता लक्षण उसकी असीमितता तथा निरंकुशता है, किन्तु आलोचक प्रभुसत्ता की असीमितता को स्वीकार नहीं करते हैं। ब्लंटशली

(Bluntschli) लिखता है कि ''राज्य अपने समस्त स्वरूप में, सर्वशक्तिमान नहीं हो सकता, क्योंकि बाहरी मामले में वह अन्य राज्यों के अधिकारों से और आन्तरिक क्षेत्र में स्वयं की प्रकृति तथा अन्य सदस्यों के व्यक्तिगत अधिकारों से सीमित है।''

आलोचकों के अनुसार व्यवहार में प्रभुसत्ता की असीमितता पर निम्नलिखित प्रतिबन्ध होते हैं:–

1. नैतिक प्रतिबन्ध
2. रीति–रिवाज तथा परम्पराएँ
3. धर्म
4. अन्तर्राष्ट्रीय कानून
5. अन्य समुदाय, आदि

अन्तर्राष्ट्रीयता के अनुरूप नहीं (Against Internationalism)

ऑस्टिन (Austin) का प्रभुसत्ता का सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीयता की धारणा का भी स्पष्ट उल्लंघन करता है। विज्ञान की प्रगति ने विश्व के विभिन्न देशों को एक–दूसरे के बहुत अधिक समीप ला दिया है और वर्तमान समय में एक राज्य की प्रभुसत्ता अंतर्राष्ट्रीय कानून तथा विश्व जनमत से बहुत अधिक सीमित होती है।

महत्व
(Importance)

यद्यपि ऑस्टिन (Austin) ने प्रभुसत्ता सिद्धान्त की अनेक आलोचनाएँ की गई हैं लेकिन इनमें से अधिकांश ओलाचनाएँ ऑस्टिन (Austin) के दृष्टिकोण को ठीक प्रकार से न समझने के कारण की गयी हैं। ऑस्टिन (Austin) ने उस सिद्धान्त का प्रतिपादन कानूनी दृष्टिकोण के आधार पर किया और निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि कानूनी दृष्टिकोण से ऑस्टिन का सिद्धान्त सही है। यह सिद्धान्त स्पष्ट और तर्कसंगत है। इस सिद्धान्त की अवहेलना नहीं की जा सकती।

1.6.10 प्रभुसत्ता का बहुलवादी सिद्धान्त या बहुलवाद (Pluralistic Theory of Sovereignty or Pluralism)

प्रभुसत्ता की एकलवादिता की इस धारणा के विरूद्ध जिस विचारधारा का प्रतिपादन किया गया। जिसमें मैटलैण्ड (Maitland), फिलगिस (Figgs), डिग्विट (Dugvit), क्रेव (Krabb), लिंडसे (Lindsay), डरखैम (Durkam), मिस फॉलेट (Miss Follet), बार्कर (Barker), कोल (Cole), लॉस्की (Laski) का नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है। इस प्रकार बहुलवाद को प्रभुसत्ता की एकलवादी धारणा के विरूद्ध एक ऐसी प्रतिक्रिया कहा जा सकता है, जो यद्यपि राज्य के अस्तित्व को बनाये रखना चाहती है, किन्तु राज्य की प्रभुसत्ता का अन्त भी करना चाहती है।

हेसियो (Hasio) ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि ''बहुलवादी राज्य एक ऐसा राज्य है, जिसमें सत्ता का केवल एक ही स्रोत नहीं है, यह विभिन्न क्षेत्रों में विभाजनीय है और इसे विभाजित किया जाना चाहिए।'' ("The pluralistic state is simplyu a state in which it is divisible into parts and should be divided.") बहुलवाद को समझने के लिए कुछ विचारकों के कथनों का उल्लेख निम्न प्रकार से है :–

लिण्डसे (Lindsay) ने लिखा है कि ''यदि हम तथ्यों का अवलोकन करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रभुसत्ता

के सिद्धान्त का अन्त हो चुका है। ("If we look at the facts, it is clear enough that theory of sovereign. State has broken down.") लॉस्की (Laski) के शब्दों में ''समाज के ढाँचे को पूर्ण होने के लिए उसे संघात्मक होना चाहिए।'' ("The structure of social organization, if it wants to be adequate, must be federal in character.") क्रेब (Krabb) के अनुसार ''प्रभुसत्ता के इस सिद्धान्त को सब लोग स्वीकार नहीं करते, इसलिए इसे राजनीति शास्त्र से निकाल दिया गया है।'' ("The nation of sovereighty is no longer recognised among civilized people and should be expaned from political Theory.")

बार्कर (Barker) का कहना है ''राज्य को जीवन की समान योजना को रूप में समुदायों को अपने साथ, अन्य समुदायों के साथ, अपने सदस्यों के साथ सम्बन्धों को नियमित करने चाहिए। अपने साथ सम्बन्ध इसलिए नियमित करने चाहिए, ताकि उसकी अपनी योजनाओं में एकता रहे। अन्य समुदायों के साथ सम्बन्ध इसलिए स्थापित करने पड़ते हैं, ताकि कानून के सामने सब समुदाय समान रहें और अपने सदस्यों के साथ उनके सम्बन्ध इसलिए स्थापित करने पड़ते हैं ताकि कोई समुदाय अपने सदस्यों पर अत्याचार न कर सकें।'' ("The state is general and embracing scheme of life, must necessarity adjust the relations of associations to itself, to other associations and to their own member to itself in order to maintain the integrity of its own scheme, to other associations and to their own member to itself in order to maintain the integrity of its own scheme, to other associations in order to preserve the quality of association before law and to their own members in order to preserve the individual form the possible tyranny of the group.")

फिगिस (Figgs) ने लिखा है, ''राज्य ने न तो परिवारों को और न ही चर्च को बनाया है, और न ही यथार्थ में यह कहा जा सकता है कि उसने क्लब तथा मजदूर संघों का निर्माण किया है और न ही मध्य युग में वर्णित समाज अथवा धार्मिक संघ की रचना की है। विश्वविद्यालय का निर्माण तक भी नहीं किया। ये संस्थाएँ मनुष्य जाति की प्राकृतिक तथा सामूहिक प्रकृति का फल है। सर्वोच्च सत्ता द्वारा इसके साथ किये जाने वाला व्यवहार ऐसा हो कि इनका मौलिक अस्तित्व बना रहे। उन्हें यह विश्वास दिलाया जाये कि इनका नियंत्रण और निर्देशन व्यक्तियों के समान होगा तथा उन्हें नाममात्र नहीं समझा जाएगा।'' ("The state did not create the Family; nor did it create the churches, nor even in any real sense can it be said to have created the clubs or trade unions, nor in the middle ages the guilds or the religious orders, hardly even the universities, or the colleges within the universities. They have all arisen ouot of the netural associative instincts of mankind and should all the treated by the supreme authority as having a life, original and gauranteed to be controlled and directed like persons, but not regarded in their corporate capacity as mere names.")

लॉस्की का मत है, ''राज्य का सर्वशक्तिमान होने का दावा पूर्णतः 'अवास्तविक है' वास्तव में व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन पर न तो वह नियंत्रण कर सकता है और न ही उसकी सम्पूर्ण आवश्यकताओं को पूरा कर सकता है। इस प्रकार राज्य उन अनेक समुदायों में से एक है जो मनुष्य के जीवन के विभिन्न पहलुओं की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं, जिनके प्रति व्यक्ति की पूर्ण वफादारी होती है। ''ये समुदाय राज्य से किसी भी प्रकार से कम प्रभुसम्पन्न नहीं है। ("These associations no less sovereign than state itself.")

इस प्रकार, ''जब समाज का संगठन संघीय है तो सत्ता की व्यवस्था भी संघीय होनी चाहिए।'' ("Because society is federal, the authority must be federal also".) अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी लॉस्की (Laski) राज्य की निरंकुश प्रभुसत्ता को नहीं मानता। लास्की (Laski) ने स्पष्ट कहा है, ''अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से स्वतन्त्र सर्वोच्च सत्ता सम्पन्न राज्य

का विचार मानवता के कल्याण के लिए घातक है।'' ("The nation of an independent sovereign state is on international side, fatal to the well-being of the humanity.") इसे समाज के स्थाई लाभ के लिए छोड़ देना चाहिए।

गैटल ने बहुलवाद की विस्तार से व्याख्या की है। गैटल (Gettel) के अनुसार, ''बहुलवादी इस बात को मान्यता नहीं देते कि राज्य एक सर्वोच्च समुदाय है। वे अन्य समुदायों को भी उसी आधार पर आवश्यक एवं प्राकृतिक मानते हैं। उनका विचार है कि वे सभी समुदाय वैसे ही महत्वपूर्ण है जैसे की राज्य।''

1.6.11 बहुलवाद की विशेषताएँ (Characteristics of Pluralism)

अन्य विचारधाराओं की तरह बहुलवाद की भी कई विशेषताएँ हैं जो कि इस प्रकार हैंः–

राज्य केवल एक समुदाय (State is only an Association)

परिवार, क्लब तथा चर्च की भान्ति राज्य का कार्य मुख्यतः व्यक्ति के जीवन के राजनीतिक पहलू का विकास करना है। इस प्रकार राज्य एक राजनीतिक समुदाय है और इसे अपना कार्यक्षेत्र व्यक्ति की राजनीतिक आवश्यकताओं की पूर्ति तक ही सीमित रखना चाहिए। लॉस्की (Laski) के अनुसार, ''समुदायों के अनेक प्रकारों में से राज्य भी एक है और अन्य तुलना में वह व्यक्ति की भक्ति का उच्चतर अधिकार नहीं रखता है।'' मेटलैण्ड (Maitland) के अनुसार ''राज्य भी इन्हीं समुदायों में से एक है।'' ("State is the species of same genius.")

सभी जरूरतें पूरी नहीं (Can-not fulfill all the needs)

मनुष्य का जीवन बहुमुखी है। उसे अपने जीवन में अनेक प्रकार की आवश्यकताएँ महसूस होती है। राज्य अकेला उनकी पूर्ति के लिए अनेकों समुदायों का निर्माण करता है। उदाहरणातः सामाजिक, राजनीतिक आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक संगठन आदि। इस समुदायों का राज्य से किसी भी प्रकार कम महत्व नहीं है। गैटेल (Gattell) के अनुसार, ''बहुलवादी नहीं मानते कि राज्य एक अद्वितीय संगठन है। उनका विचार है कि अन्य समुदाय समान रूप से महत्वपूर्ण तथा प्राकृतिक है। ये जितना कि राज्य अपने ही प्रभुसत्ता सम्पन्न है जितना कि राज्य अपने कार्यों में है। ("The pluralists deny that the state is a unique organization. They hold that other associations are equally important and natural. They argue that such associations for their purpose are as sovereign as the State is for its purpose.") फिगिस (Figgs) का कहना है ''राज्य ने न तो परिवार बनाए हैं और न ही चर्च।'' ("The State did not create the family nor did it create churches.")

कानून राज्य आदेश नहीं (Law is not a comman of the state)

बहुलवादी ऑस्टिन के इस मत का खण्ड करते हैं कि कानून राज्य के प्रभु का अपने अधीनस्थ व्यक्तियों को दिया गया आदेश है। ये रीति रिवाजों नैतिकता, जनता की जरूरतों तथा समाज की न्यायिक भावना को कानून का स्रोत मानते हैं। क्रेब (Krabb) के अनुसार, ''समाज की न्यायिक भावना ही कानून का स्रोत है। ("The spring of law is in the community's sense of Justice.")

''यह हमारे अच्छाई और बुराई के ज्ञान का परिश्रम है।'' ("Law is the product of our sense of righteousnes wrong.") लॉस्की (Laski) के अनुसार ''व्यक्ति की नैतिक भावना ही कानून का एकमात्र स्रोत है।'' ("Individual conscience is the only true source of law.")

ड्रयूगी (Duguit) के मतानुसार, ''कानून सामाजिक जीवन की उत्पत्ति है।''

केवल शक्ति नहीं (Force is not the only sanction)

ऑस्टिन (Austin) प्रत्येक कानून के पीछे शासक का दण्डनीय शक्ति मानते हैं। बहुलवादी लेखक ऑस्टिन के इस मत से बिल्कुल भी सहमत नहीं। प्रत्येक समाज में अधिकांश व्यक्ति कानून की उपयोगिता के कारण ही उनका पालन करते हैं। लोग कानून का पालन स्वेच्छा से करते हैं, न कि दण्ड के भय से। लॉस्की (Laski) का कहना है कि, ''कानून में आदेश का भाव अप्रत्यक्ष है, इसमें दंड का विचार विशेष रूप से अनुपस्थित है।'' ("The nation of command in law is confingent and indirect, and the idea of penalty is again, save in the most circutious way, notably absent.")

कानून राज्य से स्वतन्त्र व उच्च (Independent and above state)

बहुलवादी कानून को राज्य से स्वतन्त्र व उच्च मानते हैं। डयुगी (Duguit) के अनुसार कानून राजनीतिक संगठन से स्वतन्त्र, श्रेष्ठ तथा पूर्व कालिक (Prior) होते हैं। कानून राज्य को सीमित करता है। क्रेब (Krabb) के शब्दों में, ''राज्य कानून का नहीं बल्कि कानून राज्य का निर्माण करते हैं।'' ("It is not the state which creates the law, but on the other hand, it is the law which creates the state.")

न तो निरंकुश है, न ही असीमित (Neither absolute nor unlimited)

ऑस्टिन (Austin) के अनुसार प्रभुसत्ता निरंकुश, असीमित व स्वतन्त्र है। लेकिन लॉस्की (Laski), मैकाइवर (Maciver) तथा ब्लंशली (Bluntschli) जैसे बहुलवादी लेखक ऑस्टिन के इन विचारों से सहमत नहीं है। वे इस पर अनेकों प्रतिबन्ध व सीमाएँ मानते हैं। कोई भी राज्य चाहे कितना भी निंरकुश व स्वतन्त्र क्यों न हो अन्तर्राष्ट्रीय कानून सन्धियों व समझौतों की अवहेलना नहीं कर सकता और न ही यह संविधान द्वारा दिये गये नागरिकों के अधिकारों, जनमत, नैतिकता व धर्म का ही उल्लंघन कर सकता है। लॉस्की (Laski) कहते हैं, ''कहीं भी किसी भी प्रभु को कभी भी असीमित शक्तियाँ प्राप्त नहीं रही और ऐसे प्रयत्नों का परिणाम हमेशा ही कुछ नए संरक्षणों की स्थापना से हुआ है। ("No sovereign has any where possesed unlimited power and the attempt to exert, it has always resulted in the establishment of safeguards.") मैकाइवर (Macive) के विचार में, ''राज्य की निश्चित सीमाएँ हैं, निश्चित शक्तियाँ व निश्चित जिम्मेदारियाँ हैं।'' ("State has definite limits, definite powers, and definite responsibibilites.") ब्लंशली (Bluntschli) लिखते हैं ''राज्य की प्रभुसत्ता बाह्य रूप में अन्य राज्यों के अधिकारों से सीमित है, और आन्तरिक रूप से अपनी प्राकृतिक तथा नागरिकों के अधिकारों से सीमित है।'' ("The state as a whole is not almighty, for it is limited extermely by the rights of the other states and internally by the right of its individual members.")

विकेन्द्रीकरण में विश्वास (Faith in decentralisation)

बहुलवाद विकेन्द्रीकरण को राज्य का आधार मानता है। बहुलवाद के अनुसार, ''स्थानीय समस्याएँ भी कम महत्वपूर्ण नहीं है और इन स्थानीय समस्याओं का समाधान शक्ति के केन्द्रीयकरण की पद्धति से नहीं किया जा सकता है। बहुलवादियों के विचार से राज्य को चाहिए कि अपनी केन्द्रीय सत्ता को विकेन्द्रीत करके अन्य समुदायों में विभाजित कर दे और इस प्रकार एक संघात्मक (Federal) सामाजिक संगठन की स्थापना की जाये।

राज्य के अस्तित्व का विरोधी नहीं है (Not against State)

बहुलवादी राज्य की निरंकुश सत्ता का तो खंडन करते हैं, किन्तु अराजकतावाद या साम्यवाद की भान्ति वे उसकी समूलता नष्ट करने के पक्ष में नहीं है। राज्य का अन्त करने के स्थान पर वे राज्य की शक्तियों को सीमित करना चाहते हैं। बहुलवादियों के अनुसार प्रभुसत्ता का एकलवादी सिद्धान्त 'कोरी मूर्खता' के अतिरिक्त ओर कुछ नहीं है। राज्य के संबंध में इस बहुलवादी दृष्टिकोण के कारण ही कहा जाता है कि 'बहुलवादि एक ओर अराजकता तथा दूसरी ओर एकलवादी इन दोनों के बीच मध्य मार्ग अपनाने का प्रयत्न करता है।'

एक लोकतन्त्रीय विचारधारा है (Favours Democracy)

बहुलवाद राज्य के वर्तमान रूप का विरोध होने पर भी लोकतन्त्रीय प्रणाली का विरोधी नहीं है। आरम्भ से लेकर अन्त तक बहुलवाद का विश्वास व्यावसायिक प्रतिनिधित्व तथा गुप्त मतदान में है। वास्तव में बहुलवाद का उद्देश्य तो सर्वाधिकारवादी राज्य के स्थान पर एक ऐसे लोकतन्त्रीय राज्य की स्थापना करना है, जिसमें शासन व्यवस्था का संगठन नीचे से ऊपर की ओर हो।

1.6.12 बहुलवाद की आलोचना (Criticism of Pluralism)

आलोचकों द्वारा बहुलवाद की कई दृष्टिकोणों से आलोचना की गयी है, जिन्हें संक्षेप में निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है :–

अराजकता को पैदा करता है (Pluralism leads to anarchy and chaos)

बहुलवाद के विरूद्ध आलोचना का सबसे प्रमुख आधार यह है कि बहुलवादी विचारधारा को स्वीकार करने का स्वाभाविक परिणाम अराजकता की स्थिति होगा। यदि प्रत्येक समुदाय को राज्य के समान मान लिया जाये और उन्हें प्रभुसत्ता का थोड़ा सा अधिकार दिया जाए तो समाज में कानूनविहिन स्थिति उत्पन्न हो जाएगी। गिलक्राइस्ट (Gilchrist) का कथन है कि ''यदि बहुलवाद को तार्किक निष्कर्ष तक ले जाया जाये, तो इसका अर्थ होगा समाज का विघटन और शान्ति एवं व्यवस्था के स्थान पर विविध समुदायों द्वारा अपनी–अपनी सर्वोच्चता स्थापित करने के लिए संघर्ष।''

सभी समुदाय समान स्तर के नहीं है (All Associations are not Equal)

बहुलवादी विचारधारा के विरूद्ध एक महत्वपूर्ण तर्क यह है कि इस विचारधारा में समाज के सभी समुदायों को समान स्तर का मान लिया गया है। प्रत्येक समुदाय को राज्य के समान मान लेना बहुलवादियों की एक भारी भूल है। वास्तव में, राज्स संस्था के अपने विशेष कार्यों के कारण उसकी स्थिति अन्य सभी समुदायों से भिन्न और विशेष होती है।'' गार्नर (Garner) के शब्दों में ''विभिन्न श्रेणियों व वर्गों को और एक दूसरे से प्रतियोगिता करने वाले समुदायों को उचित मर्यादा में रखने का कार्य करके राज्य एक महत्वपूर्ण सेवा करता है।'' ("State renders important service of keeping within proper limits classes and struggles between completing groups and performing the role of a reference or umprire and adjusting or reconciling their conflicting interests.")

काल्पनिक एकलवाद पर आक्रमण (Attack on Imaginary Monoistic Theory)

बहुलवादी आलोचना का एक आधार यह भी है कि बहुलवाद जिस निरंकुश प्रभुसत्ता पर आक्रमण करता है, उसका प्रतिपादन हीगल को छोड़कर राज्य सत्ता के अन्य किसी भी समर्थक द्वारा नहीं किया गया है। बोदिन (Bobin), हॉब्स

(Hobbes), रूसों (Rousseau), ऑस्टिन (Austin) आदि सभी विचारक राज्य की प्रभुसत्ता पर प्राकृतिक, नैतिक या व्यावहारिक कुछ न कुछ नियंत्रण अवश्य ही स्वीकार करते हैं। कोकर (Coker) के अनुसार, ''इनमें से किसी भी लेखक का यह दावा नहीं था कि प्रभुसत्ता की अवज्ञा करना, उसको चुनौती देना, उसकी आलोचना करना अथवा विरोण करना, अश्वमेघ अनैतिक, तर्कहीन, असामाजिक तथा अव्यावहारिक है।'' ("None of these writers claimed that no criticise or change, to disobey or resist the state authority is necessarity inmoral, irrational, anti-social or even impractical.") इस प्रसंग में आर्शीवादम् (Ashiravatham) ने लिखा है कि ''बहुलवाद जिस एकलवादी शत्रु पर प्रहार करते हैं, बहुत कुछ कल्पना तक यह एक कल्पनात्मक जीव ही है।'' ("The monistic theory whom the pluralist attack is to a large extent an imaginary figure.")

अन्तर्विरोधों से भरा (Full of Contradictions)

बहुलवाद के विरूद्ध एक गम्भीर बात यह है कि बहुलवादी विचारधारा अन्तरविरोधों से भरी पड़ी है। बहुलवादी सैद्धान्तिक रूप से तो राज्य की शक्तियों को कम करके उसे अन्य समुदायों के साथ समता प्रदान करते हैं किन्तु जब ये व्यवहार पर आते हैं तो यह स्वीकार करते हैं कि किसी एक संस्था को प्रभु बनाये बिना राजनीतिक समाज की कल्पना नहीं की जा सकती है। फिगिस (Figgs) का कथन है कि राज्य 'समाजों का समाज' (Society of Societies) है। उसे समन्वय तथा एकीकरण की एजेन्सी के रूप में विशिष्ट कार्य तथा उच्च सत्ता प्राप्त है।'' लॉस्की (Laski) ने कहा है ''कानूनी दृष्टि से कोई इसे अस्वीकार नहीं कर सकता कि प्रत्येक राज्य में कोई ऐसा अंग होता है जिसकी सत्ता असीमित होती है और विभिन्न संस्थाओं में सरकार सबसे महत्वपूर्ण है।'' इस प्रकार बहुलवादी विचारधारा अन्तर्विरोधियों से पूर्ण है और बहुलवादियों की यह कहकर आलोचना की जाती है कि ''वे प्रभुसत्ता को सामने के द्वार से बाहर निकालकर पीछे के द्वार से वापस ले आते हैं।'' इस सम्बन्ध में कोकर (Coker) लिखते हैं ''यह बड़ा मनोरंजक अन्तर्विरोध है।'' (It is an interesting contradiction.) बहुलवादी राज्यों में व्यक्ति स्वतन्त्र नहीं होगा (No guarntee for individual liberty in Pluralistic state) बहुलवादियों की यह धारणा है कि समुदायों पर से राज्य का नियंत्रण हटा लेने पर व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व के विकास हेतु स्वतन्त्रतापूर्वक वातावरण उपलब्ध होगा, वस्तुतः ऐसी बात नहीं है। इस सम्बन्ध में जिर्मथ (Zimmerth) हमें चेतावनी देते हुए कहते हैं कि ''आज जो व्यक्ति राज्य की निरंकुश सत्ता के विरूद्ध आवाज उठा रहे हैं। वे साधारणतः यह भूल जाते हैं कि पड़ोसियों के अत्याचार से अधिक भीषण अत्याचार कोई नहीं हो सकते। समुदाय जितना छोटा होगा आपके जीवन और कार्यों पर उसका उतना ही कठोर नियन्त्रण होगा।'' ("Those who talk of state absolution are ignority the simple truth that there is no tyranny like the tyranny of near neighbours. The smaller the group the tighter the strangle hold over you life and activities.")

राज्य संघों का संघ नहीं हो सकता (State is not an association of association)

आलोकों द्वारा लिंडसे (Lindsay), बार्कर (Barker) और अन्य बहुलवादियों के इस कथन की कटु आलोचना की गयी है कि राज्य 'समुदायों का एक समुदाय' है। राज्य और अन्य समुदायों की स्थिति में आधारभूत अन्तर है। जबकि अन्य समुदायों का सम्बन्ध मनुष्य के किसी विशेष हित के साथ होता है, राज्य का सम्बन्ध उनके सर्वमान्य या व्यापक हितों के साथ होता है। इस सम्बन्ध में बहुलवादी विचारक मिस फॉलेट (Miss Follett) ने भी लिखा है कि ''राज्य एक निर्माण समुदायों से नहीं हो सकता, क्योंकि एक या अनेक समुदाय मनुष्य की पूर्णता को अपने में नहीं सम्मिलित कर सकता और एक आदर्श राज्य व्यक्ति की पूर्णता की मांग करता है। मेरी नागरिकता एक व्यावसायिक संघ की सदस्यता से कहीं बड़ी वस्तु है। राजनीति में एक पूर्ण मनुष्य की आवश्यकता होती है। मेरी आत्मा का निवास राज्य में ही है।''

("The state cannot be composed of groups, because no group, nor any member of groups contain the whole of me, my citizenship is something bigger than my membership, of any vocational group, we want the whole man in politics. The home of my soul is in the state.")

कानून सम्बन्धी विचार गलत (Pluralist view on law is wrong)

बहुलवाद की आलोचना इस दृष्टि से भी की जाती है कि डिग्विट (Diguit) और क्रैब (Krabb) जैसे बहुलवादी दार्शनिकों का कानून सम्बन्धी विचार असत्य है। ये दार्शनिक कानून को राजकीय सत्ता से स्वतन्त्र, उच्चतर तथा अधिक प्राचीन मानते हैं, किन्तु कानून को राज्य के व्यक्तित्व से उच्च मानना सही नहीं है। यद्यपि यह सत्य है कि राज्य का आदेश मात्र होने से कोई नियम कानून के रूप में मान्य नहीं होता, किन्तु इसके साथ यह भी सत्य है कि कोई भी नियम समाज में चाहे कितना भी मान्य क्यों न हो, राजकीय स्वीकृति के अभाव में उसे कानूनी मान्यता नहीं है।

बहुलवाद का महत्व
(Importance of Pluralism)

गैटल (Gattell) के शब्दों में, ''बहुलवाद कठोर और सैद्धान्तिक विधानवादिता तथा ऑस्टिन के प्रभुसत्ता के सिद्धान्त के विरूद्ध एक सामयिक और स्वागत योग्य प्रतिक्रिया है।'' ("A welcome and timely protest against the rigid and domestic legalism and the Austinian theory of sovereignty.") बहुलवाद अराजनीतिक संघों के बढ़ते हुए महत्व पर जोर देता है, इन समुदायों के उचित कार्यक्षत्र में राज्य के हस्तक्षेप के प्रति सचेत करता है और इस बात का प्रतिपादन करता है कि राज्य के द्वारा न केवल उन समुदायों को मान्यता प्रदान की जानी चाहिए वरन् इन समुदायों को अपने कार्य–क्षेत्र में बहुत अधिक सीमा तक स्वायत्ता प्रदान की जानी चाहिए। बहुलवाद के इस विचार को स्वीकार कर लेने से न केवल व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में सहायता मिलेगी वरन् राज्य की कार्य क्षमता में आवश्यक रूप से वृद्धि होगी। मिस फॉलेट (Miss Follett) ने बहुलवाद के गुणों के सम्बन्ध में लिखा है कि ''बहुलवादी वर्तमान राज्य की सर्वोच्चता के अधिकार को नष्ट करते हैं। वे संघों के महत्व को स्वीकार करते हैं और उन्हें मान्यता प्रदान करते व अपने कार्यक्षेत्र के सम्बन्ध में स्वायत्ता देने की आवश्यकता का प्रतिपादन करते हैं। वे स्थानीय जीवन को पुर्नस्थापित करने के पक्ष में है।'' (The pluralists prick the bubble of the present state's right to supremacy, point out the necessity of recognizing them and giving them autonomy in their work. They stand for the restoration of local life.")

बहुलवादियों के इस कथन में सच्चाई है कि कोई भी राज्य ऐसी नहीं जिसे पूर्ण स्वतन्त्र (Autonomous) माना जा सके। सत्रहवीं या अठारहवीं शताब्दी में जो परिस्थितियाँ विद्यमान थी। अब वे बदल चुकी हैं। किसी भी देश की संसद मनमाने तरीके से कानून का निर्माण नहीं कर सकती। इस सच्चाई से इंकार नहीं किया जा सकता है कि पारिवारिक, धार्मिक, सांस्कृतिक व व्यवसायिक संघों का सामाजिक जीवन में बहुत महत्व है। लॉस्की (Laski) का यह कथन बड़ा महत्वपूर्ण है कि ''समाज का स्वरूप संघात्मक है, इसलिए राजसत्ता भी संघात्मक होनी चाहिए।'' ("Society is federal, therefore authroity too ought to be federal.") विश्व शान्ति अथवा ''अन्तर्राष्ट्रिय व्यवस्था'' की दृष्टि से राज्य को अपनी प्रभुसत्ता का त्याग करना ही पड़ेगा। कई ऐसे विषय हैं जिनका प्रबंध आसानी से हम किसी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन को सौंप सकते हैं, जैसे पर्यावरण का मामला, नयी संचार–व्यवस्था (New Forms of Communication) तथा मुद्रा का प्रबंध (Monetary management) आदि।

1.6.13 निष्कर्ष

प्रभुसत्ता राज्य के विरूद्ध एक सामयिक प्रतिक्रिया होते हुए भी बहुलवादी विचारधारा को स्वीकार नहीं किया जा सकता। मैरियम और बार्न्स (Merriam and Bornes) ने अपनी पुस्तक (History of Political thought in Recent Times) में लिखा है कि ''बहुलवादियों के विरोध के बावजूद न तो राज्य की प्रभुसत्ता के सिद्धान्त का त्याग किया गया है और न ही इसका त्याग किया जा सकता है, परन्तु इस सबके बावजूद राज्य को अन्य समुदायों के समक्ष मानने को तैयार नहीं है। फॉलेट (Fallet) कहती हैं, ''कोई एक समुदाय या कई समुदाय मिलकर भी व्यक्ति के समूचे जीवन को प्रभावित नहीं कर सकते, परन्तु राज्य जीवन के हर क्षेत्र पर छाया हुआ है।'' ("No group, nor any number of groups, can contain the whole of me and the ideal state demands the whole of me.")

किसी भी संगठन या समुदाय को यह अधिकार नहीं दिया जा सकता कि वह अपने कार्यों से राज्य के जीवन को खतरे में डाल दे। उदाहरण के लिए 'हड़ताल का अधिकार' (Right to Strike) का यह अर्थ नहीं कि हड़ताली कर्मचारी कारखानों या सार्वजनिक सम्पत्ति का ही विनाश करने लगे या उन कर्मचारियों के साथ मारपीट करें जो हड़ताल में शामिल नहीं है। यह स्पष्ट है कि यद्यपि राज्य भी एक समुदाय है, परन्तु अपने संगठन उद्देश्य और शक्तियों की दृष्टि से वह अन्य समुदायों से सर्वथा भिन्न है। बार्कर (Barker) ने ठीक ही कहा है, ''राज्य का एक अनूठा लक्ष्य है (Unique purpose), उसका कार्यक्षेत्र भी अपूर्ण है (Unique Scope) और शक्तियाँ भी अनुपम हैं। (Unique Power) जार्ज सेवाईन (George Sabine) के इन शब्दों का प्रयोग ही उचित है कि ''मैं यथासम्भव एकलवादी होने का अधिकार सुरक्षित रखता हूँ किन्तु जहाँ आवश्यक हो, बहुलवादी बनने को तैयार हूँ।'' ("I reserve the right to be a monoist when I can, annd a pluralist when I must.")

1.6.14 मुख्य शब्दावली

- प्रभुसत्ता
- मौलिकता
- एकलवादी
- बहुलवाद
- अराजकता

1.6.15 अभ्यास हेतू प्रश्न

1. प्रभुसत्ता की परिभाषा दें। उसकी मुख्य विशेषताओं की व्याख्या करें।
   (Define Sovereignty. Discuss its main Characteristics.)
2. प्रभुसत्ता के विधि सिद्धान्त का निरीक्षण करें और इस पर प्रतिबन्धों की व्याख्या करें।
   (Examine the legal theory of sovereignty and discuss its limitations.)
3. प्रभुसत्ता की परिभाषा करें और इसकी मुख्य विशेषताओं की व्याख्या करें। प्रभुसत्ता की सीमाएँ यदि कोई हैं तो उसका वर्णन करें।
   (Define sovereignty and explain its main characteristics. What, if any are the limitations of sovereignty?)
4. ऑस्टिन द्वारा प्रतिपादित प्रभुसत्ता को परिभाषिक करें। उनके अनुसार प्रभुसत्ता की कौन–सी विशेषताएँ हैं?

(Give Austin's definition of sovereignty. What are the cheif characteristics of sovereignty according to him?)

5. ऑस्टिन की प्रभुसत्ता के सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या करें।
(Critically examine Austin's Theory of Sovereignty.)

6. बहुलवाद से आपका क्या अभिप्राय है? इसकी आलोचनात्मक व्याख्या करें।
(What do you understand by the term 'Pluralism'? Critically examine it.)

7. बहुलवाद पर एक निबन्ध लिखें।
(Write an essary on pluralism.)

8. राज्य की प्रभुसत्ता पर बहुलवादी आक्रमण की व्याख्या करें।
(Discuss pluralistic attack on State Sovereignty.)

9. प्रभुसत्ता के बहुलवादी सिद्धान्त का आलोचनात्मक निरीक्षण करें।
(Critically examine the Pluralistic Theory of Sovereignty.)

1.6.15 संदर्भ सूची

- N.P. Barry. Introduction to Modem Political Theory, London, Macmillan, 1995.
- M. Carnoy, The State and Political Theory, Princeton NJ, Princeton University Press, 1984.
- G. Catlin, A Study of the Principles of Politics, London and New York, Oxford University Press, 1930.
- N.J. Hirschman and C.D. Stefano (eds.), Revisioning the Political Feminist Reconstruction of Tradition concepts in Western Political Theory, West View Press, Harper Collins, 1996.
- D. Heater, Citizenship: The Civic Ideal in World History, Political and Education, London, Orient Longman, 1990.
- D. Held, Models of Democracy, Cambridge, Polity Press, 1987, G Mclellan, D. Held and S. Hall (eds.), The Idea of the Modem Slate, Milton Keynes, Open University Press, 1984.
- D. Miller, Social Justice, Oxford, The Clarendon Press, 1976.
- D. Miller, (ed.), Liberty, Oxford, Oxford University Press, 1991.
- D. Miller, Citizenship and National Indentities, Cambridge, Polity Press, 2000.
- S. Ramaswamy, Political Theory: Ideas and concepts, Delhi Macmillan, 2002.
- R.M. Titmuss, Essays on the Welfare State, London, George Allen and Unwin, 1956.
- F. Thakurdas. Essays on Political Theory, New Delhi, Gitanjali, 1982.
- J. Waldron(ed.), Theories of Rights, New Delhi, Oxford University Press 1984.
- S. Wasby, Political Science: The Discipline and its Dimensions, Calcutta, Scientific Book Agency, 1970.